श्रीकृष्ण-सन्देश

निगमामृत

(पुरुष-सूक्त)

१.

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

आदि पुरुषके सिर असंख्य हैं, नयन असंख्य असंख्य चरण ।
वह भूको सब ओर छोरसे घेर खड़ा दस अंगुल बढ़ ॥

२.

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

यह जो सम्मुख वर्तमान जग पुरुषात्मक हो है निर्भ्रम,
जो पहले था, जो होगा, वह पुरुषरूप सब है अनुपम ।
वह स्वामी अमृतत्त्व—मोक्षका वह आत्मा सबका अपना,
जीवोंको निज कर्म-योग देने कोही है जगत बना ॥

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोर बिरला

सम्मानित

सम्पादक-मण्डल

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

डा० विद्यानिवास मिश्र

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

डॉ० भगवान् सहाय पचौरी

संख्या

वर्ष : ७, अङ्क : १०

मई, १९७२

श्रीकृष्ण-संवत् : ५१९८

सम्पादक

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

शुल्क

वार्षिक : ७ रु०

आजीवन : १५१ रु०

प्रबन्ध–सम्पादक

देवधर शर्मा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

'श्रीकृष्ण-सन्देश'के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक्य, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

• नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छांट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकका है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख 'सम्पादक' 'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज, वाराणसीके पतेपर भेजें।

• 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एकबार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनि-आर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

• विज्ञापन : इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता।

व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ

मथुरा

मासिक व्रत, पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०२९ शुद्ध वैशाख शुक्ल प्रतिपद् १४ मई '७२ से ज्येष्ठ कृष्ण अमावास्या ११ जून '७२ तक]

मई : १९७२ ई०

दिनांक	वार	व्रत-पर्व
१४	सोमवार	अक्षय तृतीया । त्रेतायुगादि । श्रीपरशुरामजयन्ती ।
१५	रवि	वृष-संक्रान्ति ।
१७	बुध	श्री आद्यशङ्कराचार्य-जयन्ती ।
१९	शुक्र	गङ्गा-सप्तमी ।
२३	मंगल	मोहिनी एकादशी-व्रत, सबके लिए ।
२५	गुरु	प्रदोष-व्रत ।
२६	शुक्र	श्रीनृसिंह-चतुर्दशी ।
२७	शनि	कूर्मजयन्ती । पूर्णिमा-व्रत ।
२८	रवि	वैशाखस्नान-समाप्ति । बुद्धजयन्ती । वैशाखी ।
३१	बुद्ध	संकष्टी गणेश चतुर्थी-व्रत ।

जून : १९७२ ई०

दिनांक	वार	व्रत-पर्व
५	सोम	शीतलाष्टमी ।
७	बुध	अपरा एकादशी-व्रत, स्मार्तोंके लिए ।
८	गुरु	,, वैष्णवोंके लिए ।
९	शुक्र	प्रदोष-व्रत । मासशिवरात्रि-व्रत ।
११	रवि	दर्शश्राद्ध । वटसावित्री-व्रत, गौड स्त्रियोंके लिए ।

●

अनुक्रम

प्रपानक	पत्रपुट	परिवेषक
मुझे पाना चाहते हो तो···	७	भगवान् श्रीकृष्ण
यह आया पुरुषोत्तम मास !	९	श्री 'राम'
जरासन्धपर विजय	१०	श्रीशङ्खपाणि
व्रज प्रदेशकी मीरा : मोहनी देवी	१५	श्री मनोरमा सिनहा
पृथ्वीसे परमात्मा तक सभी क्षमाशील	१९	श्री स्वामी अखण्डानन्दजी
जब अन्धकारसे फूड पड़ती है नयी चेतनाकी किरणें	२०	श्री डॉ० अवधबिहारी कपूर
आपस्च विश्व-भेषजी:	२७	आचार्य श्री विनोबा भावे
मधुर मकरन्दका	३१	श्री 'राम'
आजकी शिक्षा; सुधार और सुझाव	३२	श्री डॉ० गोविन्ददास
तारो, जलते बुझ जाते हो !	३८	श्री सत्यनारायण द्विवेदी
पितृभक्त भगवान् परशुराम !	३९	श्री उमाशङ्कर दीक्षित
आचार्य शङ्कर और भगवान् श्रीकृष्ण	४१	श्री कृष्णकिङ्कर
करुणाके अवतार भगवान् बुद्ध	४४	श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट
क्या युद्ध भी 'योग' बन सकता है ?	४७	श्री सुखलाल उपाध्याय
जब ईश्वरवाद दाँव पर लगाया गया !	५१	श्री गो० न० वैजापुरकर
बाई सा'ब झाँसीवारी	५४	श्री स्व० डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा
गोपालतापनी उपनिषद्	६०	श्री प्रभुदयाल मीतल

श्री कृष्ण-जन्मस्थान :

प्रत्यक्षदर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

(मई १९७२)

★

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके निर्माणका प्रयत्न एक प्रशंसनीय प्रयत्न है। इसमें अदना-आला सभीका सहयोग होना चाहिए। पूर्ण निर्माणके बाद मानव-मानवमें अटूट प्रेमकी प्रेरणा देनेके लिए यह एक आदर्श तीर्थ होगा।

रामनारायण त्रिपाठी

महामन्त्री, उत्तरप्रदेश नागरिक-परिषद

मैं भगवान् श्रीकृष्णके पावन जन्मस्थानके दर्शनकर आत्मविभोर हो गया। इस पुनीत स्थलमें पौराणिक संस्कृति तथा व्रज-संस्कृतिका सुन्दर-स्वर्णिम मिलन हो रहा है। यहाँ भारतकी राष्ट्रिय एकताके भी दर्शन होते हैं। साम्प्रदायिक सद्भावका ऐसा मिलन-केन्द्र अन्यत्र दुर्लभ है।

मेरा विनीत सुझाव तथा निवेदन है कि इस महान् स्थलको कृष्ण-साहित्य तथा व्रज-साहित्यके शोध-संस्थानमें भी परिणत करनेकी चेष्टा की जाय।

इस स्थानका सुव्यवस्थित प्रवन्ध, निर्माण-कार्य, स्वच्छता, प्रभावान्विति तथा सद्व्यवहार स्तुत्य है। धार्मिक स्थलोंमें सामान्यतया इन बातोंका अभाव मिलता है। मेरी मंगल-कामनाएँ तथा प्रणति स्वीकार कीजिये।

साहित्यमार्तण्ड डॉ लक्ष्मीनारायण दुबे

एम० ए० (हिन्दी-इतिहास)

सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

शताब्दियोंसे करोड़ों भारतीयों और विश्व-मानवके जीवनमें अनन्त प्रेम-रस और जीवनके परम सत्य तथा सच्चे आनन्दकी प्रतिष्ठाके मूलाधार प्रभु श्रीकृष्णकी स्मृति और महकते हुए फूलोके सौरभकी तरह जन-जीवनमें उनके लोकोत्तर व्यक्तित्वसे प्राप्त जीवन्त प्रेरणाके प्रचार-प्रसारके लिए श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका पुनर्निर्माण तथा समस्त भारतीय-साहित्यको प्रभावित करनेवाले श्रीमद्भागवत पुराणसे सम्बन्धित 'भागवत-भवन' की प्रतिष्ठा तथा 'अतिथि-गृह' आदि अन्य प्रवृत्तियोंकी व्यवस्था भारतके सांस्कृतिक धार्मिक तथा सम्पूर्ण जीवनके परम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए एक नितान्त प्रेरणाप्रद तथा प्रशंसनीय कार्य है। मनुष्य-जीवनके परिष्कार और भागवत-धर्मके अनुरागियोंको इस 'पुनर्जागरण-यज्ञमें अपना सर्वविध सहयोग प्रदान कर जीवनकी कृतार्थता प्राप्त करनी चाहिए।

डॉ० सुवालाल उपाध्याय 'शुकरत्न'

केन्द्रीय-विद्यालय, कोटा

I visited this sacred spot 20 or 22 years before with my father. At that time the temple was not built. Dr. K- M. Munshi, Shri M. Anantshayanam Ayyenger, Shri Mavalankar and other great leaders of country felt that a good temple must be built at the birth place of Lord Krishna. Rashtrapati Rajendra Prasadji gave all his moral support to the proposal. Many great donors like Birlas, Dalmias and Goenka gave money freely. Today we are proud that we are having a fine temple for Ballkrishna. The scheme envisages a bigger Bhagwat Bhawan which may be completed in a few years. The people of India are joining in this great venture with all their heart. may this place shine like a brilliant Kohinoor to spread the message of Bhagwat Bhawan.

A. C. Kuppu Swami
Lecturer Institute of Secretariat Training & Management
Cabinet Secretariat
New Delhi

Accompanied by my wife (Shrimati Rajkumari) and her brother Mehta Narain Dutta, I had the luck of bowing on the part of earth where one day, the greatest Philospher the gallant fighter, the learned scholar and the wizard of winning over every heart, made his appearance. This place is sure to show light to humanity for ever through the graee of Shri Krishna, like the Gospel of truth 'the Geeta'.

Bhai Jangbir
Deputy Manager
Food Corporation of India, Kandla

I am much impressed by seeing the birthplace of Lo·d Krishna. I hope that all the devotees of the world will have the chance to visit this holy place and that it will remain hear for ever.

George Tittel
Amsterdam, Holland
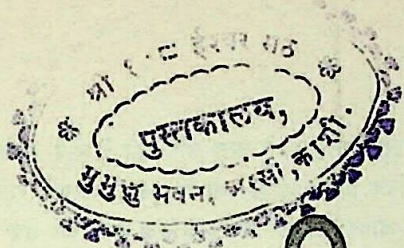
श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वर्ष : ७] मथुरा, मई १९७२ [अङ्क : १०

मुझे पाना चाहते हो तो

मुझमें मन लगाओ : मन्मना भव । मुझे धन, वैभव, पूजा-पाठ तथा उत्तमोत्तम उपहार पानेकी इच्छा नहीं हैं; मैं तुमसे—समस्त जीवमात्रसे केवल उसका मन चाहता हूँ। जो मुझको पाना चाहता हो, वह अपना मन मुझे दे दे—आधा नहीं, पूरा मन। कुछ बचा-कर न रखे। आधा मन जगत्का होकर रहे और आधे मनसे मुझको भी चाहा जाय; यह सौदा मुझे पसन्द नहीं है। मेरी एक छटा, एक झाँकीके लिए पूरे मनका मूल्य अपेक्षित है। जिस मनमें अनेक प्रकारकी कामनाएँ बसती हैं, उस व्यभिचारी मनसे मेरी प्राप्ति नहीं हो सकती। मुझे साझेदारी नहीं चाहिए। तुम्हारे सम्पूर्ण मनपर मेरा अखण्ड अधिकार होना चाहिए। कोई अपनेको अलग रखकर सम्पूर्ण मनका समर्पण नहीं कर सकता; अतः मनके साथ ही आत्म-समर्पण कर दो। तुम्हारे मन, बुद्धि, आत्मा सब मेरे हो जायें। किसीपर भी किसी अन्यका अधिकार न रहने पाये। तभी तुम मेरे सच्चे भक्त हो सकते हो। तभी अनन्य भक्त कहला सकते हो। जो मेरा भक्त होकर दूसरोंके सामने हाथ फैलाये, दूसरोंसे भीख माँगता फिरे, वह निश्चय ही न तो मेरा भक्त है और न मुझपर उसका रत्ती भर भी विश्वास है। मेरा भक्त और दूसरेके दरवाजेका भिक्षुक—यह परस्पर विरुद्ध बात है। दर-दरके भिखमंगोंको दुतकार और फटकार ही मिलती है, प्यार शायद ही कहीं नसीब होता हो। किन्तु जो मुझे अपना मन सौंपकर मेरे अनन्य भक्त हो गये हैं, जो मेरे सिवा दूसरी किसी वस्तुका चिन्तन ही नहीं करते; उन अनन्यचिन्तनशील उपासकोंका मैं योग-क्षेम वहन करता हूँ। उनके पास लोकदृष्टिसे जिस वस्तुका अभाव है, उसको मैं

देता हूँ। देता ही नहीं, अपनी पीठपर ढोकर पहुँचाता हूँ। जो वस्तु उसे प्राप्त है और उसके लिए आवश्यक है, उसकी सदा रक्षा करता हूँ। जिस प्रकार माता अपनी अनन्य शरणमें रहनेवाले बालककी सतत रक्षा करती है, उसकी प्रत्येक आवश्यकतापर ध्यान देती है और उसे सदा सुखी देखना चाहती है, उसी प्रकार मैं भी अपने अनन्य भक्तोंके लिए करता हूँ। भक्त निश्चिन्त हो जाता है मेरे आश्रयमें आकर। मैं स्वयं ही उसके लिए सारी चिन्ता करता हूं। केवल आवश्यक वस्तुएँ ही नहीं देता, अपने आपको भी उसपर उत्सर्ग कर देता हूँ। जैसे अबोध बच्चेके पीछे माँ चलती है उसी प्रकार अनन्य भक्तके पीछे मैं चलता हूँ। जो अनन्यचित्त रहकर सदा मेरा स्मरण-चिन्तन करता है, वह मेरी दृष्टिमें नित्ययुक्त योगी है और उसके लिए मैं सदा सुलभ हूँ। जिसने अपनी मन-बुद्धि मुझे अर्पित कर दी है, वह मेरा परम प्रिय भक्त है : **मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।**

इसलिए मैं बार-बार आह्वान करता हूँ, पुकारता हूँ कि मुझसे बिछुड़े हुए मेरे ही अंशभूत जीवो ! तुम केवल मेरी शरण आओ। चारों ओरका आशा-भरोसा छोड़कर एकमात्र मेरे हो जाओ, मेरे विश्वासपर अपनेको निर्भर कर दो, मैं तुमको सब पाप-तापोंसे मुक्त कर दूँगा। तुम्हे इतना ही करना है—मुझमें ही अपना मन लगा दो : **मय्येव मन आधत्स्व।** मुझे ही अपनी बुद्धि अर्पित कर दो : **मयि बुद्धिं निवेशय।** इसका परिणाम क्या होगा, यह भी सुन लो। ऐसा करनेके बाद तुम मुझमें हो निवास करोगे। मेरी ही गोदमें समोद क्रीडा करते रहोगे। ठीक उसी तरह, जैसे बालक माँकी गोदमें खेलता है। इस बातमें थोड़ा-सा भी संशय नहीं है : न संशयः। यह ध्रुव सत्य है कि **न मे भक्तः प्रणश्यति।** मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता। जब तुम 'मन्मना' और 'मद्भक्त' हो जाओगे तो स्वतः 'मद्याजी' बन जाओगे। केवल मेरा ही भजन-ध्यान, पूजन-आराधन तुमसे बनेगा। तुम्हारा मस्तक सदा मेरी ही ओर झुकेगा। इस प्रकार अनन्य भक्तिसे युक्त हो जानेपर केवल मत्परायण—अनन्य शरणागत हो जानेपर तुम मुझे ही प्राप्त करोगे।

यह लोक अनित्य है, असुख है; परन्तु तुम्हें नित्य सुख अक्षय आनन्द अभीष्ट है; अतः लोकविषयक आसक्ति छोड़कर मेरा भजन करो। मुझे पाकर तुम्हें कुछ भी पाना शेष नहीं रह जायगा। तुम सदाके लिए सब कुछ पा जाओगे। मेरे समीप रहकर सेवाका सुख उठाओगे या चाहो तो मुझमें मिलकर मुझसे अभिन्न हो जाओगे। यही जीवनका परम लक्ष्य है; तुम्हें त्याग केवल अपने मनका करना है, पर इससे जो प्राप्त होनेवाला अक्षय परम फल है, उसका कदापि मूल्यांकन नहीं हो सकता। धर्मात्माकी तो बात ही क्या है? अधमसे अधम और पतितसे पतित भी यदि पापसे मुँह मोड़कर अनन्य भावसे मेरा भजन करने लग जाय तो वह परम साधु मानने योग्य है; क्योंकि उसने एक उत्तम निश्चयको अपनाया है। अब उसके परम धर्मात्मा होनेमें विलम्ब नहीं है; उसे भी शाश्वत शान्ति प्राप्त होकर ही रहेगी।

●

यह आया पुरुषोत्तम मास !

यह आया पुरुषोत्तम मास।
पुरुषोत्तमके भजनभावका कैसा सुन्दर मिला सुपास ॥

१.

अमल मास, मल-मास नहीं यह,
वृद्धिमास है, ह्रास नहीं यह;
साधन - आराधनकी बेला—
कलिका केलि-विलास नहीं यह।
सात्त्विक भावोंके मधुवनमें
मुसकाया मधुमय मधुमास ॥

२.

संग्रहमें ही बीता जीवन,
किन्तु रह गया रीता जीवन;
परमारथके काम न आया—
व्यर्थ जागता जीता जीवन।
धन-वर्जन आराधन-अर्जन—
का अवसर यह आया पास ॥

३.

पूर्व कुकृत-कृन्तनमें लग जा,
सुकृत इदानींतनमें लग जा;
पुरुष! रहे तू पुरुषोत्तम बन—
पुरुषोत्तम-चिन्तनमें रग जा।
नील - चन्द्रको रख मनके—
मंदिरमें भर के पूर्ण प्रकाश ॥
यह आया पुरुषोत्तम मास।

— श्री 'राम' —

जरासन्धपर विजय

श्री शङ्खपाणि

★

मगधके प्रतापी नरेश बृहद्रथका विवाह काशिराजकी दो जुड़वी कन्याओंसे हुआ था। महाराज दोनोंके प्रति समान भावसे अनुरक्त थे और वे जुड़वी बहनें भी परस्पर ईर्ष्या या जलनसे दूर रहकर निरन्तर पतिके प्रति अनन्य प्रेम रखती थीं। महाराजकी युवावस्था बीत गयी; परन्तु कोई वंशधर कुमार, जो राज्यका योग्य उत्तराधिकारी हो सके, नहीं उत्पन्न हुआ। राजा बृहद्रथ इसी चिन्तामें डूबे रहते थे। अनेकानेक धार्मिक अनुष्ठान करनेपर भी महाराजका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ।

एक दिन राजाको मन्त्रीसे यह समाचार मिला—'गौतमगोत्रीय महात्मा काक्षीवान्‌के पुत्र परम उदार मुनि चण्डकौशिक तपस्यासे उपरत होकर अकस्मात् इधर आ निकले हैं और एक आम्रवृक्षके नीचे आसन लगाये बैठे हैं।' यह सुनकर राजा बृहद्रथ अपनी दोनों रानियों तथा प्रमुख पुरवासियोंके साथ उनके पास गये। राजाने उत्तमोत्तम वस्तुओंकी भेंट देकर मुनिको सन्तुष्ट किया। महात्माकी आज्ञा पाकर राजा उनके निकट बैठे। मुनिके कुशल-समाचार और आगमनका प्रयोजन पूछनेपर राजा बोले :

'मुनिश्रेष्ठ! मेरे कोई पुत्र नहीं है। सुना है, पुत्रहीन मनुष्यका जन्म और जीवन व्यर्थ है। इस व्यर्थ जीवनको लेकर राज्यकार्यसे क्या प्रयोजन? अतः मैं पत्नियोंके साथ वनमें रहकर तपस्या करना चाहता हूँ; क्योंकि सन्तानहीनको न तो इस लोकमें कीर्ति प्राप्त होती है और न परलोकमें अक्षय स्वर्ग ही।'

राजाके ऐसा कहनेपर महर्षिको दया आ गयी। उनका हृदय पिघल गया। वे ध्यानस्थ हो गये। उसी समय उनकी गोदमें एक आमका फल गिरा। मुनिने उसे हाथ में ले लिया और मन-ही-मन उसे अभिमन्त्रित करके कहा : 'भूपाल! यह फल अपनी रानीको खिला देना। यथासमय पुत्रकी प्राप्ति होगी। अब तुम राजधानीको लौटो और प्रजाका पालन करो, यही तुम्हारा धर्म है। पुत्रको राजगद्दीपर बिठाकर ही तुम वानप्रस्थ-आश्रममें आना। मैं तुम्हारे भावी पुत्रके लिए आठ वर देता हूँ—१. वह ब्राह्मणभक्त होगा। २. युद्धमें अजेय रहेगा। ३. उसका युद्धविषयक उत्साह कभी कम न होगा। ४. वह अतिथिसेवी होगा। ५. दीन-दुखियोंपर दया करेगा। ६. उसका बल महान् होगा। ७. लोकमें उसकी कीर्ति फैलेगी। ८. तथा वह प्रजावत्सल होगा।' यह सुनकर राजा कृतार्थ हो गये और मुनिके चरणोंका स्पर्श करके राजधानीमें लौट गये। राजाने वह फल रानियोंके हाथमें दिया और

वे उसके दो टुकड़े करके बाँट कर खा गयीं। दोनों रानियाँ साथ-साथ गर्भवती हुईं। यथासमय सन्तानका जन्म हुआ : उसे देखकर रानियोंको बड़ा शोक हुआ। दोनोंने अपने गर्भसे एक ही शरीरका आधा-आधा टुकड़ा उत्पन्न किया था। प्रत्येक खण्डमें एक आँख, एक हाथ, एक पैर, आधा पेट, आधा मुख और कटिके नीचेका आधा भाग था। रानियाँ ऐसी सन्तति देखकर घबरा गयीं। उन्होंने उन दोनों जीवित टुकड़ोंको दाइयोंके हाथसे बाहर फेंकवा दिया। दाइयाँ उन टुकड़ोंको चौराहेपर रखकर लौट आयीं।

उन दिनों राजाके नगरके पास एक राक्षसी रहती थी, जिसका नाम था जरा। मानवरक्त-मांस ही उसका आहार था। वह उसी समय उधर आ निकली। उसने उन दोनों मांस-खण्डोंको उठा लिया और विधातासे प्रेरित हो ले जानेकी सुविधाकी दृष्टिसे उसने उन दोनों टुकड़ोंको जोड़ दिया। परस्पर संयोग होते ही उन दोनों टुकड़ोंका एक शरीर बन गया और वह एक जीते-जागते बलिष्ठ राजकुमारके रूपमें परिणत हो गया। वह शिशु वज्रके सारतत्त्वका बना जान पड़ने लगा। राक्षसी उसे दूरतक ले जानेमें असमर्थ हो गयी। बालकने अपने लाल हथेलीवाले हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर मुँहमें डाल ली और अत्यन्त कुपित हो सजल जलधरके समान गम्भीर गर्जन करता हुआ-सा जोर-जोरसे रोने लगा। उसके रोदनका शब्द सुनकर रनवासकी स्त्रियाँ राजाके साथ बाहर निकल आयीं। जराने मानवीका रूप धारण किया और उस शिशुको गोदमें लेकर राजासे कहा : 'राजन्! यह तुम्हारा पुत्र है। इसे ग्रहण करो। ब्रह्मर्षिके आशीर्वादसे तुम्हारी दोनों पत्नियोंके गर्भसे इसका जन्म हुआ है। दाइयोंने इसे घरके बाहर लाकर डाल दिया था, मैंने इसकी रक्षा की है।' राजाने उसे ग्रहण किया। उसकी दोनों वत्सला माताओंने उसे स्तनोंके दूधसे सींच दिया। सारे नगरमें भारी उत्सव मनाया गया। जरा नामवाली राक्षसीने उसके दोनों टुकड़ोंको जोड़ा था अथवा जरावस्थामें पहुँचे हुए राजाको वह पुत्र मिला था, इसीलिए उसका 'जरासन्ध' नाम रखा गया। वह अपने समयका बड़ा प्रतापी और दिग्विजयी वीर था। मुनिके वरदानसे जहाँ उसमें दिव्य गुण प्रकट हुए; वहीं राक्षसीके सम्पर्कसे उसमें कुछ राक्षसोचित क्रूरता आदि दोष भी आ गये थे।

× × ×

देवर्षि नारदके मुखसे धर्मराज युधिष्ठिरको स्वर्गीय महाराज पाण्डुका यह सन्देश मिला कि 'तुम राजसूय-यज्ञ करो।' राजसूय-यज्ञके अनुष्ठाता महाराज हरिश्चन्द्रको इन्द्रलोकमें जो लोकोत्तर सम्मान प्राप्त था, उस पर आकृष्ट होकर ही पाण्डुने देवर्षि द्वारा स्वर्गसे[1] उक्त सन्देह भिजवाया था।

---

१. स्वर्गलोक मेरुगिरिके उस पूर्ववर्ती शिखरपर है, जहाँ सूर्यदेवका शुभागमन होनेपर हम भूतलपर सूर्योदयका दृश्य देख पाते हैं। वहाँ देवताओंका निवास, आकाशगङ्गा और अमरावती पुरी है। आजकल जहाँ हमारी पहुँच नहीं होती, उस लोककी सत्तापर ही हम अविश्वास कर बैठते हैं। परन्तु इतिहास-पुराणोंसे सिद्ध है कि सत्ययुग, त्रेता और द्वापर युगोंमें विशिष्ट शक्तिशाली महापुरुषोंको स्वर्गलोकमें इस मर्त्यशरीरसे ही जाने और वहाँसे सकुशल

युधिष्ठिरने पिताका सन्देश पाकर भगवान् श्रीकृष्णको बुलवाया और उनसे इस प्रकार वार्ता की : 'प्रभो ! मैं राजसूय-यज्ञ करना चाहता हूँ। परन्तु यह केवल मेरे चाहनेसे पूरा नहीं हो सकता। जिस उपायसे उस यज्ञकी पूर्ति हो सकती है, वह सब आपको ही विदित है। सर्वेश्वरीय-शक्तिसे सम्पन्न पुरुष ही राजसूय-यज्ञ सम्पन्न कर सकता है। कुछ लोग सौहार्दवश, कुछ स्वार्थवश और कुछ लोग प्रेमाधिक्यके कारण मुझे राजसूय-यज्ञका अधिकारी बताते हैं; परन्तु मैं अपनी दुर्बलताओंसे अपरिचित नहीं हूँ; अतः आप ही इस विषयमें उचित सलाह दे सकते हैं।'

श्रीकृष्णने कहा : 'राजन् ! राजसूयके पूर्व दिग्विजयकी आवश्यकता होती है। जबतक महाबली जरासंध जीवित है, तबतक न तो पूर्णतः दिग्विजय सम्भव है और न राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान। आजकल मूर्धाभिषिक्त राजाओंके जितने कुल विद्यमान हैं; उनमेंसे अधिकांश जरासंधके कारागारमें बन्द हैं। उसने महादेवजीकी आराधनासे एक विशेष प्रकारकी शक्ति प्राप्त कर ली है, जिससे वह अजेय बन बैठा है और सभी राजा उससे परास्त हो गये है। वह राजाओंकी बलि देकर एक तामस-यज्ञका अनुष्ठान करना चाहता है। उसने राजाओंके बहुत बड़े समुदायको बारी-बारीसे जीतकर अपनी राजधानीके भीतर पशुपति-मन्दिरके एक भागमें कैद कर रखा है। हम यादव लोग भी उसीके आतंकसे मथुरा छोड़कर द्वारकामें आ बसे हैं। यदि आप राजसूय-यज्ञ सम्पन्न करना चाहते है, तो बन्दी राजाओंको छुड़ाने और जरासंधको जीतनेका प्रयत्न कीजिये।'

युधिष्ठिर : 'क्या आप, बलराम, भीमसेन और अर्जुन ये सब मिलकर भी जरासन्धको परास्त नही कर सकते ?'

भीमसेन : 'श्रीकृष्णमें नीति है, मुझमें बल है और अर्जुनमें विजयकी शक्ति है। हम तीनों मिलकर अवश्य मगधराजपर विजय प्राप्त कर सकते हैं।'

श्रीकृष्ण : 'राजन् ! मान्धाता शत्रु-विजय करके, भगीरथ प्रजापालन करके, कार्तवीर्य अर्जुन तपःशक्तिसे, भरत स्वाभाविक बलसे तथा राजा मरुत्त धन-समृद्धिसे राजसूय करके

लौटनेका सौभाग्य प्राप्त था। राजा नहुष इसी मर्त्यदेहसे कुछ कालके लिए अमरलोकमें देवेन्द्र-पदपर प्रतिष्ठित हुए थे। राजा दुष्यन्त इन्द्रके भेजे हुए रथसे ही देवराजकी सहायताके लिए स्वर्गतक गये थे। राजा दशरथने तो शनिलोकपर भी आक्रमण किया था। महाराज रजि और मुचुकुन्दने भी देवलोकमें जाकर दानवोंके साथ देवेन्द्रकी ओरसे युद्ध किया और विजय पायी थी। वनवास-कालमें तपस्या द्वारा पाशुपत-अस्त्रको प्राप्तकर इन्द्रकी आज्ञा से कुन्ती-पुत्र अर्जुन भी स्वर्गमें गये थे और वहाँ उन्होंने निवात-कवचोंको युद्धमें परास्त किया था। राजा युधिष्ठिर भी देवराजकी इच्छासे सदेह स्वर्ग गये थे। श्रीकृष्णने भी पारिजातके लिए स्वर्गमें जाकर इन्द्रको युद्धमें हराया था। ऋषि-मुनियोंकी तो स्वर्गमें आने-जानेके लिए अबाध गति थी। विज्ञान यदि कभी सूर्यकी कक्षाका भेदन करके ऊपर उठ सके तो चन्द्रलोककी ही भाँति वह स्वर्गलोकके धरातलका भी प्रत्यक्ष दर्शन कर सकेगा। इन्द्रके समान जैत्ररथ वह बना सकेगा—इसमें अभी तो संशय ही है।

सम्राट् बने थे। ये सभी एक-एक गुणसे ही सम्राट् बन सके थे। आपमें तो सम्राट्के लिए अपेक्षित शत्रु-विजय, प्रजा-पालन, तपःशक्ति, धन-समृद्धि और नीति—ये पाँचों गुण विद्यमान हैं। तथापि आपके मार्गमें जरासन्ध हीं सबके बड़ी बाधा है। जो कैदी राजाओंको छुड़ायेगा, वही उज्ज्वल यशका भागी होगा तथा जो जरासन्धको परास्त कर देगा, वह सम्राट् होगा।'

अर्जुन : 'अस्त्र-शस्त्र, बल-पराक्रम आदि सभी श्रेष्ठ गुण हमें प्राप्त हैं, हम अवश्य वन्दी राजाओंको छुड़ाने और जरासन्धको परास्त करनेमें समर्थ होंगे।'

श्रीकृष्ण : 'भरतकुलभूषण और कुन्ती-पुत्रके मुखसे जैसी बात निकलनी चाहिए, वैसी ही अर्जुनने कही है। हमें यह पता नहीं कि मृत्यु कब आयेगी—रातमें या दिनमें? हमने यह भी नहीं सुना है कि युद्ध न करनेसे कोई मनुष्य अमर हो गया हो। वीर पुरुषका इतना ही कर्तव्य है कि वह अपने हृदयके संतोषके लिए नीतिशास्त्रोक्त मार्गके अनुसार शत्रुओंपर आक्रमण करे। नीति अच्छी हो तो तदनुसार आरम्भ किया गया कार्य अवश्य पूर्ण होता है। शत्रुके साथ भिड़नेपर ही दोनों पक्षोंका अन्तर ज्ञात होता है। दोनों पक्ष सब बातोंमें समान ही हों, यह सम्भव नहीं है। अच्छी नीति और उत्तम उपायके अभावमें विनाश निश्चित है। हमें नीति एवं युक्तिसे शत्रुके समीप पहुँचना होगा। जिसकी सैनिकशक्ति बढ़ी-चढ़ी हो, ऐसे शत्रुके साथ संमुख युद्ध करना उचित नहीं है। यही बुद्धिमानोंकी नीति है। मैंने कालयवनका इसी नीतिसे वध किया था। हम छिपे तौरपर शत्रुके निकट पहुँच जायँ, यह हमारे लिए निन्दाकी नहीं, प्रशंसाकी बात होगी। फिर हम उसपर आक्रमण करके काम बना सकते हैं।'

युधिष्ठिर : 'जरासन्धके प्रबल सहायक कौन-कौनसे हैं?'

श्रीकृष्ण : 'जरासन्धके प्रबल सहायक बहुत थे; किन्तु वे सब एक-एक करके मारे गये। अपने साथियोंसहित कंस कालके गालमें चला गया। जरासन्धके दो मन्त्री थे—हंस और डिम्भ। वे अजेय थे; परन्तु मथुराके युद्धमें स्वयं ही यमुनाजीके जलमें डूब मरे। एकलव्य भील भी मारा जा चुका है। यह समय जरासन्धके वधके लिए अनुकूल है। सैनिक-युद्धमें उसे परास्त करना देवताओं और असुरोंके लिए भी कठिन है। उसे केवल बाहुयुद्ध (या द्वन्द्वयुद्ध) में ही जीता जा सकता है। मुझमें नीति है, भीममें बल है और अर्जुन हम दोनोंके रक्षक हैं। हम तीनों मिलकर मगधराजको साध लेंगे। वह घमंडी है, हमसे और अर्जुनसे लड़ना पसन्द नहीं करेगा। केवल भीमसेनसे युद्ध करेगा और मारा जायगा। आप भीमसेन और अर्जुनको मुझे धरोहरके रूपमें सौंप दें।'

युधिष्ठिर : 'नीति, विजय और बल तीनोंके प्रतीक आप तीनों मिलकर असंभव भी संभव कर सकते हैं।'

धर्मराजकी आज्ञा पाकर तीनों मगधदेशकी और चल पड़े। वहाँ पहुँचकर वे सीधे फाटकपर नहीं गये, नगरके ऊँचे पर्वत चैत्यकके शिखरपर चढ़ गये। वहाँ तीन बड़े-बड़े नगाड़े थे, जिनपर चोट करनेसे सुदूरपर्यन्त दीर्घकालतक आवाज गूँजती रहती थी। तीनों वीरोंने वे तीनों नगाड़े फोड़ दिये और नगरका परकोटा तोड़कर गिरिव्रज दुर्गके भीतर वे घुस गये।

क्रमशः तीन ड्योढ़ियोंको पार करके निर्भय एवं निश्चित भावसे जरासन्धके पास जा पहुँचे। वे ब्राह्मणोचित वेषमें थे। उन्हें आया देख अतिथिप्रेमी जरासंव उठकर खड़ा हो गया और बोला : 'आपका स्वागत है।'

श्रीकृष्ण : 'राजन्! मेरे ये दोनों साथी मौन-व्रत लिये हुए हैं। आधी रात बीतनेपर इनका मौन-व्रत टूटेगा। उस समय ये आपसे बात करेंगे।'

राजा उन्हें यज्ञशालामें ठहराकर स्वयं राजभवनमें चला गया। आधी रातको पुनः लौटनेपर इन तीनोंकी ओर देखकर उसे बड़ा विस्मय हुआ। वे तीनों अतिथि उसे देखकर खड़े हो गये। मगधराज बोला : 'आप लोग बैठें।' उनके बैठनेपर जरासन्ध बोला :

'आपने परकोटा तोड़कर राजाका अपराध किया है। फिर भी निर्भय हो बिना द्वारके ही नगरमें आप लोग घुस आये हैं, इसका क्या कारण है?'

श्रीकृष्ण : 'शत्रुके घरमें बिना दरवाजेके ही जाया जाता है।'

'आप लोगोंके साथ मैंने वैर किया है, इसका स्मरण नहीं है।'

'तुमने सैकड़ों राजाओंको कैद करके उन सबकी रुद्र देवताको बलि देनेका निश्चय किया है। क्या यह कोई साधारण वैर हैं? इसे तुम भूल गये हो?'

'ये सब तो यज्ञके बलि-पशु हैं।'

'क्या अपने ही वर्णके लोगोंको बलि-पशु बनाया जा सकता है? मगधराज! अभिमानवश तुम अपना विवेक खो बैठे हो। राजाओंको छोड़ो अथवा स्वयं कालके गालमें जानेको तैयार हो जाओ। मैं तुम्हारा सुप्रसिद्ध शत्रु वासुदेव हूँ। ये दोनों भीमसेन और अर्जुन हैं। मैं इनका ममेरा भाई हूँ। हममेंसे किसीके साथ भी द्वन्द्व युद्ध करो।'—श्रीकृष्णने कहा।

श्रीकृष्णकी ललकार सुनकर मगधराजने अपने पुत्र सहदेवको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं युद्धके लिए तैयार हो गया।

'हम तीनोंमें से किसके साथ युद्ध करना चाहते हो?'—श्रीकृष्णने पूछा

'भीमसेनके साथ।'—मगधनरेशने उत्तर दिया।

दोनोंमें भयानक मल्लयुद्ध होने लगा। कार्तिक मासकी शुक्ल प्रतिपदसे युद्ध आरम्भ हुआ और रात-दिन अविरामगतिसे चलता रहा। चतुर्दशीकी रातमें मगधनरेशको थकावटका अनुभव होने लगा। इस समय भगवान् श्रीकृष्णने एक तिनका चीर कर संकेत किया। संकेत समझकर भीमसेनने जरासंधको धरतीपर पटक दिया और उसकी पीठको धनुषकी तरह मोड़कर दोनों घुटनोंकी चोटसे उसकी रीढ़ तोड़ डाली। इसके बाद अपने एक हाथसे उसका एक पैर पकड़कर और दूसरे पैरको अपने पैरसे दबाकर महाबली भीमने उसे दो खण्डोंमें चीर डाला। उस समय भीमसेनका सिंहनाद सुनकर मगधवासी भयभीत हो काँपने लगे। जरासंधके शवको राजद्वारपर सुलाकर उसके ही रथपर आरूढ़ हो भीम और अर्जुनसहित श्रीकृष्णने वन्दी राजाओंको बन्धनसे मुक्त किया। उन राजाओं, पुरवासियों, तथा जरासंध-कुमार सहदेवसे सत्कृत हो वे तीनों विजयी वीर इन्द्र-प्रस्थको लौट आये। युधिष्ठिरने उनका स्वागत किया और उनसे मिलकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

व्रज-प्रदेशकी मीरा : भक्तिमती श्री मोहिनी देवीजी

श्री मनोरमा सिनहा एम० ए० एल० टी०

★

सुनसान जंगलमें कितनी ही कलियाँ प्रकट होती, मुस्कराती और मुरझा जाती हैं। कभी-कभी तो उनकी सुगन्धसे सारा उपवन ही महक उठता है, लेकिन उन कलियोंका अस्तित्व तो अनजान ही होता है। ऐसा ही कुछ व्यक्तित्व भक्त-कवयित्री मोहनी देवीजीका है जो व्रजभूमिमें उत्पन्न होकर भी व्रजके लिए अज्ञात ही रही हैं। वे व्रज-संस्कृतिमें रम-सी गयी थीं। कृष्णभक्ति-परम्परा में अग्रणी होनेके बाद भी जनसाधारणके लिए अपरिचित ही रहीं।

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामीजी महाराजकी अनन्य भक्ति तथा करुण पुकारसे शालग्राम-शिलासे प्रकट हुए श्री राधारमण लालजी महाराज ही मोहिनीजीके इष्टदेव थे। उन्होंने इष्टदेवसे साक्षात्कार करने-हेतु अपने जीवनके सभी सुखोंको उनके चरणोंमें अर्पित कर उसी व्रजके कन्हैयाकी यादमें अपने पलक-पाँवड़े बिछा रखे थे। विरहिणी मीरा द्वारा निर्देशित मार्गका अनुसरण कर अपने राधारमणलाल जीको ही उन्होंने अपना सब कुछ माना। भक्तोंके सांनिध्यमें बैठकर संसारकी झूठी लोक-मर्यादाको सदाके लिए त्याग दिया। प्रियतमके दर्शनोंकी इच्छा, दर्शन न होनेकी स्थितिमें चिर-विरह तथा स्वप्नावस्थामें प्रिय-दर्शनकी अनुभूति आदि उनके द्वारा रचित पदों, दोहों, कवित्तों एवं छन्दोंके महत्त्वपूर्ण विषय रहे हैं।

परम-धन्य, भक्त-अग्रणी मोहिनी देवीजीका जन्म संवत् १९५६ के लगभग अलीगढ़ जिलेके सोभना नामक ग्राममें हुआ था। उनके पूज्य पिता ठा० श्री यशवन्तसिंह एवं बाबा ठा० करणसिंहजी दोनों ही सज्जनता एवं सरलताकी प्रतिमूर्ति थे। मोहिनीजीको भगवद्भक्ति-रूपी प्रसाद तो वंशानुक्रमसे ही प्राप्त हुआ था। आपका विवाह ठा० शंकरसिंहसे हुआ, जो जयपुर जिलेमें स्थित गीजगढ़के ठा० कुशलसिंहके यहाँ रियासतमें मैनेजर थे। वे स्वयं भी साधु प्रकृतिके ही थे। आपके एक पुत्रका नाम ओंकारसिंह तथा पुत्रीका नाम गिरजादेवी था। मोहिनी देवीने एक बड़ा समृद्ध परिवार अपने पीछे छोड़ा। उनके पुत्र, पौत्र, जामाता आदि यशस्वी और समृद्ध है।

भगवान् जिन्हें अपनी शरणमें लेकर भगवद्-भक्ति प्रदान करते हैं, उन्हें सांसारिक बन्धनोंसे मुक्ति समयसे पूर्व ही मिल जाया करती है। भक्तिमती मोहिनी देवीजीके साथ भी

कुछ ऐसा ही हुआ। पहले उनके एकमात्र पुत्र ओंकारसिंह स्वर्गवासी हुए, जिनको मृत्युकी सूचना उन्हें मृत्युसे १४ वर्ष पूर्व ही मिल गयी थी। इसके पश्चात् उनके पति तथा पुत्री गिरजादेवी भी इस संसारसे असमयमें ही चल बसे। पतिके छोटे भाईने, जिसे मोहिनी देवीने अपने पुत्रके समान पाला-पोसा था, अब उन्हें दुःख देना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ तक कि कुछ दिनोंतक मोहिनी देवीजीको जीवन निर्वाह-हेतु आवश्यक वस्तुएँ—भोजन, वस्त्र, आवास आदि भी पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध नहीं हो सकीं। फिर क्या था—मोहिनी देवीजीको संसारसे विरक्त होनेका शुभ-अवसर मिल गया। सब कुछ छोड़कर वे चित्रकूटमें आकर वास करने लगीं। कहा करती थीं :

केवल भरोसे आपके, जीवन है घनश्याम।
हमरे तो अब कुछ नहीं, धन-धरती और धाम॥

फिर भगवान् भी ऐसे भक्तोंपर दया करते हैं—उनके मानसको समय-समयपर अपने चमत्कारसे प्रकाशित करते रहते हैं। एकबार मोहिनी देवीजी चित्रकूटमें भगवान्की भक्तिमें लीन रहकर भी कभी-कभी अपने दुःखी जीवन तथा अपनी पुत्री तथा पुत्रके चिर-वियोगसे बहुत अधिक अस्त-व्यस्त हो जाया करती थीं। परिणामतः उन्हें भोजन बनाने और खानेकी भी याद नहीं रहती थी।

एकबार तो भोजनकी तैयारी किये बिना अपने नैराश्य-जीवन प्रभावित तथा भगवद्भक्तिमें लीन होकर वे सब कुछ भूल गयी। अन्तर्यामी भगवान्को तो यह पता ही था कि उन्होंने भोजन नहीं किया है। मोहिनीजीने क्षणमें देखा कि एक सुन्दर गौरवर्णके बालकने उनका द्वार खोला तथा पेड़ेसे भरा दोना उनके हाथपर रखकर कहा : 'भोग लगाकर इन्हें खा लेना।' इतना कहकर बालक वहाँसे अन्तर्धान हो गया। मोहिनीजीने प्रसाद ग्रहण किया। फिर उन्हें जब पता चला कि वे पेड़े सीधे उनके इष्टदेव द्वारा ही भेजे गये थे, तो उनके प्रेमकी पीर केवल इतना ही पुकार सकी :

असुरन लूटी सम्पदा, विकल भये सुरनाथ।
मो भूखीके कारण, पेड़ा लाये रघुनाथ॥

प्रभुके बालकके वेषसे अचानक दर्शन प्राप्तकर वे क्षणभरके लिए भी उनकी अलौकिक छविपर मुग्ध नहीं हो पायीं, इसका उन्हें महान् दुःख रहा। वे कहा करतीं :

मैं मूरख बैठी रही किये न उनको मान।
बिना परिचय के दिये, खिसक गये भगवान॥

इस घटनाने मोहिनी देवीजीके मनमें अपने इष्टदेवके प्रति एक अडिग श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न कर दिया। उन्हें कामद-गिरिकी परिक्रमामें भगवान् रामके साक्षात् दर्शन हुए। इस घटनाके पश्चात् ही वे वृन्दावन आ गयीं तथा अपनेको इष्टदेव राधारमण लालजीके चरणोंमें अर्पित कर दिया। आपको गुरुके रूपमें परम वन्दनीय अरविन्दलोचनजी महाराजका सान्निध्य प्राप्त

हुआ। यहींसे मोहिनी देवीजीकी वाणी सशक्त होकर अपने इष्टदेवके अनेक प्रकारसे गुणगान करनेमें लग गयी तथा लेखनी एवं वाणी दोनों ही लीला एवं रूपका गुणगान करते हुए अघाते नहीं थे। गुरुकृपा, साधु-संगति एवं अपने इष्टदेवके प्रति अनन्यप्रेमके कारण ही उन्होंने अनेक काव्यग्रन्थोंकी रचना की। उनके 'शुक-दूत', 'कृष्णायन', 'हंसदूत', 'गौराङ्ग-चरित्र', 'व्रज-महिमा', 'वृन्दावनवास-उत्कंठा', 'कुमार-चरित्र' आदि ग्रन्थोंका उल्लेख श्री रामदास शास्त्रीने 'श्रीराधारमण-पदावली' की भूमिकामें किया है। उन्हींके कथनानुसार भक्तिमती मोहिनी देवीजीने लगभग सवा सौसे ऊपर पदों तथा सैकड़ों दोहोंकी रचना की है। प्रस्तुत ग्रन्थ अधिकतर अप्रकाशित ही हैं।

मोहिनीजी द्वारा रचित साहित्यकी अनुभूतिसे यह आभास होता है कि उनमें सूरकी-सी भक्ति, घनानन्दकी-सी टीस तथा प्रियतमके मिलनकी विरहोत्कंठा पराकाष्ठाको पहुँची हुई थी। पदोंकी रचनामें उन्होंने अपनेको तो निमित्तमात्र ही माना है। उनका विचार है कि वे स्वयं नहीं लिख रही हैं, वरन कोई उनसे लिखवा रहा है। पीताम्बरधारी भगवान् स्वयं ही उन्हें अपने गुण एवं लीलागान करनेकी प्रेरणा दिया करते हैं। उन्हींके शब्दोंमें :

मोहिं तो हरिकी प्रेरणा वे स्वयं जनावत ज्ञान।
बैठे उर लिखवावत वे ही मोहन चतुर सुजान॥
सोवत जागत वे हरि देत रहत आदेश।
लिखहु मोहिनी चरित यह प्रेम-कथा सविशेष॥

'प्रेमकथा' को स्मरण कर तो 'जायसी'के प्रेमकी पीर याद आ जाती है। उन्होंने अपने पदोंमें स्वयंको युगल-सरकारकी परम सेविका घोषित किया है, जिन्हें ललिताजीके आदेशसे इस भूतलपर आना पड़ा। उन्हें नित-प्रति ललिताजी एवं श्रीकृष्णकी याद भुलायी नहीं जाती, उनका वियोग सताता ही रहता है। वे कह उठती हैं :

आशा मेरी है यही पुजवहु श्रीबृजराज।
संग भानु को लाड़ली दर्शन दीजो आज॥

उन्हें श्रीराधाकी भक्ति भी अधिक रुचिकर लगती है। राधारमण लालजीके दर्शनहेतु वें श्री राधा जूसे केवल यही प्रार्थना करती हैं कि वे जरा प्रेमभरी दृष्टिसे उनकी ओर देख तो लें :

भानु लाड़ली द्रवहु तुम करहु कृपाकी कोर।
लखो लली तुम नजरिया नेकु तो मेरी ओर॥

उन्होंने स्वप्नावस्थामें अनेक बार अनेक सखियोंसहित श्री राधाकृष्णके दर्शन किये हैं। वे वर्णन करते-करते अपना अस्तित्व खोती चलती हैं। उन्हींके शब्दोंमें उनका सचित्र वर्णन कितना मनोहारी है :

नीके हरि मैंने लखे, तन मन सुध गइ भूल,
नीलाम्बरा राधे लली, हरि पहरे पीत दुकूल।
बलिहारी या रूपकी किया मैं करूँ बखान,
को प्रतीति मेरी करै, जिन न लखे भगवान्॥

भक्त भगवान्‌के दर्शन कर यदि सुध-बुध सब कुछ नहीं खो देता है तो फिर वह भक्त ही नहीं है। यह तो गूँगेको मीठे फलसे प्राप्त रसके समान है, जिसका वह वर्णन ही नहीं कर सकता। सबसे अधिक स्वाभाविक, भावमय एवं सचित्र वर्णन मोहिनीजी द्वारा रचित उन पदोंमें निहित है, जब वे अपनेको पूर्णिमाकी छिटकी हुई चाँदनीके मध्य वृन्दावनमें आयोजित महारासके अन्तर्गत पाती हैं। प्रियतम स्वर्णसिंहासनपर बैठे हुए हैं। सखियाँ चारों ओर सेवामें तल्लीन हैं। नृत्य एवं गान चल रहा है। उन्हें देखते ही मोहिनीजी स्वयंको सोलह वर्षका पाती हैं। उन्होंने भगवान्‌के समीप अपनेको बैठा पाया, उस समय तो उनके आनन्दका ठिकाना न रहा, जब स्वयं प्रियतमने उनका श्रृंगार कर अपने पास बिठाकर श्री राधेजूसे कहा कि 'अब एक नयी सखी और आ गयी है!' रसानुभूति कीजिये निम्न पद्यांशोंकी :

नख सिख सों सिंगार करि बैठी प्रभुके पास।
हँसि मुसक्याय मम मन हरो मेरी मनकी प्यास॥
निज कोमल जुग करन सों चुंदरी उढ़ाई श्याम।
भाल मध्य बेंदी दई मो मन भयो निष्काम॥
चोटी गूँदी प्रेम सों दिये कर्णफूल पहिराय।
प्यारी सों बोले पिया नयी सखी गई आय॥

संयोगसे वियोगकी अनुभूति अधिक कष्टदायक होती है। भक्त मोहिनीजीका प्रियतमके वियोगमें विरह मीरासे कम नहीं है। उनकी विरह-व्यथाकी चोट गहरी है—'जैसे मछली नीर-बिनु घन-बिनु व्याकुल मोर', उनके नेत्र भी दर्शनोंकी लालसामें टकटकी लगाये रहा करते हैं। वे प्रियतमको खोजते-खोजते बावरी हो गयी हैं। अन्तमें खीजकर भी यहीं कहती हैं :

लगन लगी छूटे नहीं, कोटिक करहु उपाय।
तड़फत डोलूँ लाड़ले, वेगि हि मोहिं बुलाय॥

प्रियतमकी चरण-वन्दनाकी आशामें तो उन्होंने सारा जीवन ही व्यतीत कर दिया है। उन्हें अब स्वप्नमें ही नहीं, जाग्रत्-अवस्थामें भी दर्शन होने लगे हैं। मृत्युसे पूर्व भी उनका जर्जर शरीर राधारमण लालजोके चरणोंमें अपनी लौ लगाये रहा। मृत्युसे कुछ दिनों पूर्व श्री मोहिनी जी ने यह कहा था :

कछुक दिननको कष्ट है, जो कर्मन के लेख।
रहोगो परिकर बीचमें, भोगहु भोग विशेष॥

धन्य है ऐसे भक्त-कवि, जिनपर सम्पूर्ण सगुण भक्तों तथा व्रजप्रदेशको गर्व है। भक्तकी भाषा तथा भाव दोनोंने कहीं भी तो साथ नहीं छोड़ा है। कैसी अनुपम विशेषता है, मोहिनीजी द्वारा रचित कविताकी! भक्तिमती मोहिनी देवीजी २२ अगस्त सन् १९६६ को परलोक-वासिनी हो गयीं। पार्थिव-शरीर तो दिल्लीमें ही रह गया, पर मन तो उड़कर वृन्दावन-विहारीके पास पहुँच ही गया होगा!

●

पृथ्वीसे परमात्मातक सभी क्षमाशील हैं

स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती

★

सृष्टिमें गुण-दोष दोनों होते हैं। संसारमें ऐसा कोई नहीं, जिसमें गुण-दोष दोनों न हों। मनुष्यको दूसरेका तिलभर दोष दीखता है, पर अपना सेरभर दोष नहीं दीखता। अज्ञात रूपसे अपनेमें जो ब्रह्मभाव है, उसके कारण सब अपनेको सुन्दर, सबसे बुद्धिमान् और निर्दोष समझते हैं।

एकने अपराध किया। दूसरे ने कहा : हमें क्रोध आया, हम दण्ड देंगे।' तीसरा बोला : 'तुम कानून अपने हाथमें ले रहे हो, अतः तुम भी दण्डनीय !'

एक व्यक्ति एक कामको ठीक कहता है, दूसरा दूसरे कामको। एकने किया बुरा, तुम कर गये क्षमा, तो बात समाप्त हो गयी। संसारकी निवृत्तिकी रीति दण्ड नहीं, क्षमा है।

कोई कितना भी अपराध करे, प्रतीकार न करना यह व्यक्तिगत करनेका धर्म है। एक मनुष्य अपने प्रिय व्यक्तिसे मिलने रातमें चला, मार्गमें कुत्ता भूँकने लगा। जिसे प्रिय-मिलनकी शीघ्रता थी, उसने सोचा—'कुत्तेको भूँकने दो, हम चलें।' एक दूसरा चला तो था प्रियसे मिलने ही, किन्तु कुत्ता भूँकने लगा तो वह उसके पीछे दौड़ने लगा। फलतः वह अपने प्रियसे मिल ही न सका।

क्षमा प्रियतमके मार्गमें बढ़नेका साधन है। यह भगवान् देता है। संसारमें रजोगुणी, तमोगुणी अज्ञानी लोग ही अधिक हैं। वे यदि अज्ञानवश कोई अपराध करते हैं तो उनकी समसत्तामें अपनेको ले जाना—जैसे वे हैं, जिस स्थितिमें रहनेके कारण तुम उन्हें गिरा समझते हो, उसी स्थितिमें अपनेको ले जाना—कहाँकी बुद्धिमानी है ? अतः ईश्वरसे क्षमाकी शक्ति लो।

पृथ्वीपर हम मल-त्याग करते हैं, जलमें शव डालते हैं, अग्निमें कूड़ा जलाते हैं, वायुमें दुर्गन्ध फैलाते हैं, आकाशमें अपशब्द बिखेरते हैं। किन्तु ये कोई क्रोध नहीं करते। मनमें भली-बुरी दोनों बातें आती हैं, बुद्धि भला-बुरा दोनों सोचती है, द्रष्टा आत्मा भले-बुरे दोनोंको प्रकाशित करता है। लेकिन ये कोई क्रोध नहीं करते। पृथ्वीसे परमात्मापर्यन्त सभी क्षमा करते हैं। सब अघोर हैं। अधिष्ठान अच्छे-बुरे दोनों अध्यास ग्रहण किये हुए है। तुम्हारा अहंकार ही क्षमाका विरोधी है। अहंकार अज्ञानका पुत्र है और है दुःखका बाप! इसे त्यागकर क्षमा अपनाओ। ●

जब अन्धकारसे फूट पड़ती हैं नयी चेतनाकी किरणें

डॉ० अवध बिहारीलाल कपूर

उस दिन तूफान गाड़ी चार घंटे लेट थी—शायद २६ जनवरीका गणतन्त्र-दिवस-समारोह देखने नयी दिल्ली जानेवाली भीड़के कारण, जो हर स्टेशनपर उमड़-उमड़कर आ रही थी। टूंडलामें लग रहा था कि प्लेटफार्मपर खड़े यात्रियोंके लिए गाड़ीमें बिलकुल जगह नहीं है। फिर भी वे तरह-तरहके कौशल दिखाकर भीतर हो लिये! कोई दरवाजेसे, कोई खिड़कीसे। आगरा स्टेशनपर तो निश्चित ही था कि पीठ दिखा जायँगे वहाँके सब यात्री, पर वे भी कुछ कम पराक्रमी न थे। पीठ दिखाते मैंने उनमें से किसीको नहीं देखा। गाड़ीके चलते-चलते सब भीतर दीखे या बाहर दरवाजेसे चिपके हुए। गाड़ीने भी सबका स्वागत कर भारतीय रेलवेकी परम्पराके अनुसार अपनी असीम क्षमता और औदार्यका परिचय दिया।

अगला स्टेशन मथुरा जंक्शनका था, जहाँ मुझे उतरना था। मैं टू-टायर में था, इसलिए भीड़का भय नहीं था। फिर भी जब स्टेशन आनेको हुआ, मैंने अपना बक्स और बिस्तर दरवाजेके पास लगा लिये और हाथकी पुस्तक जेबमें डाल कोटके बटन बन्दकर दरवाजेके पास खड़ा हो गया। गाड़ी रुकते ही मुझे दरवाजा खोलकर नीचे उतरते देर न लगी। उससे भी कम देर लगी मुड़कर बक्सका हैंडिल पकड़नेमें। पर इतनी देरमें दरवाजेपर भीड़ भर्रा पड़ी और मेरे सामानके ऊपर खड़ी दीखी। मैंने जी-तोड़ कोशिश की उन्हें सामान परसे उतारनेकी, पर वे टस-से-मस न हुए। उनकी धक्कम-धुक्कीमें बक्सका हैंडिल मेरे हाथसे छूट गया। सामानसे सम्बन्ध-विच्छेद होता देख मैं फिर कोशिश करने लगा डिब्बेमें घुस जानेकी। किसी प्रकार नीचेके पायदानपर खड़ा हो गया, आगे और कुछ न कर सका। गाड़ी चल देगी और मैं ऐसे ही खड़ा रह जाऊँगा—यह सोचकर पायदानसे उतर पड़ा। डिब्बेका कंटक्टर या रेलका कोई अधिकारी दीख जाय, इस उद्देश्यसे आँखें फाड़-फाड़ चारों ओर देखने लगा।

कंडक्टर साहब तो दीखे नहीं। ऐसी भीड़में उनका दीख पड़ना कोई बुद्धिमानी भी नहीं। रेलके इंजनके पास कालीवर्दीमें मुसाफिरोंसे घिरे असिस्टेंट स्टेशनमास्टर दीख पड़े। उनके पास भागा गया और बोला : 'मेरा सामन गाड़ीमें रह गया है, गाड़ी छोड़ियेगा नहीं।' वे

कुछ बौखलाये हुए-से लग रहे थे, मुझे देखकर उनकी बौखलाहट और बढ़ गयी। वे चुप्पी साध गये।

मैं फिर पीछेको भागा गाड़ीके हर डिब्बेको देखते हुए—चाहे वह फर्स्ट-क्लास हो या एयरकंडीशंड। एक फर्स्ट-क्लासमें एक सज्जन घुसते हुए दीखे। मैं झट उनके पीछे हो लिया। पर उन्होंने अन्दर घुसनेके साथ ही झटकेसे दरवाजा बन्द कर लिया।

'खोलिये, मुझे भी इसीमें बैठना है।'—'मैंने हाँपते हुए कहा।

'इसमें जगह नहीं है।'—उन्होंने जोरसे उत्तर दिया।

'खोलिये तो सही। मैं एक कोनेमें खड़ा हो जाऊँगा।'—मैंने विनयपूर्वक दोहराया।

'कह दिया न, इसमें जगह नहीं है।'—उन्होंने फिर उसी तर्जमें उत्तर दिया और दरवाजेका हैंडिल दबाकर खड़े हो गये।

इतनेमें गाड़ी चल पड़ी। चुम्बकाकृष्टको तरह मैं उसके पीछे-पीछे रेंगता रहा। गाड़ीकी चालके साथ मेरी गति भी तीव्र होती गयी। दृष्टि बराबर उन सज्जनकी ओर रही, जो दरवाजेका हैंडिल पकड़े सतर्क खड़े थे—इस आशामें कि शायद मुझ तिरसठ वर्षके बूढ़ेको रेलके साथ भागता देख दया आ जाय।

पर फर्स्ट-क्लासका वह डिब्बा आगे निकल गया। मेरी गति धीमी पड़ गयी। दिलकी गति उतनी ही बढ़ गयी। मैं देखता रह गया—गाड़ीको डाकूकी तरह दिन-दहाड़े मेरा सर्वस्व अपहरणकर दिल्लीकी ओर भागते हुए!

हाँ, सर्वस्व! उस बक्समें जिसे गाड़ी लिये जा रही थी, केवल रुपये-पैसे और कपड़े-लत्ते ही नहीं थे। उसमें दो ऐसी बहुमूल्य वस्तुएँ थीं जिनका मूल्य आँका नहीं जा सकता।

एक थी वृन्दावनके नित्य-लीला-प्रविष्ट भक्त-मुकुट-मणि श्री गौरांगदास बाबाजी महाराजके जीवन-चरित्रकी हस्तलिपि। यह कितनी बहुमूल्य थी, यह वे ही जान सकते हैं जो श्री गौरांगदास बाबाजीके बारेमें कुछ जानते हैं। उन्होंने बचपनमें ही अपने मात-पिताका असीम वात्सल्य, अपरिमित पारिवारिक सुख-ऐश्वर्य, अपनी बहुमुखी प्रतिभाके गर्भमें स्थित गौरवमय भविष्य और कलकत्तेके 'स्काटिश-चर्च कालेज'के साथियोंका स्नेह और क्रीड़ा-कौतुकपूर्ण सुखमय संग निर्मम हो त्याग दिया और व्रजधामको चले गये। वहाँ भी एक हाथकी लंगोटी लगाकर हाथमें व्रजरजका करुआ लिये व्रजेश्वर और व्रजेश्वरीकी यादमें अविरत अश्रु बहाते बन-वन भटकते; व्रजके तरु और लताओंको ही अपना संगी-साथी जान उन्हींके बीच रहते; उन्हींसे हँसते-बोलते और उन्हींसे चर्चा करते—अपने प्रिया-प्रीतम और उनके मधुर लीला-प्रसंगोंकी! उनका सब कुछ अलौकिक ही रहा!

एकबार उन्होंने किसी परमार्थ-विषयमें मुझे दुःखी देखकर कहा था :

'व्रजके तरु-लतानसे कहो। इन्हें साधारण मत जानियों। ये सब कल्पतरु हैं। यदि कोई इनसे लिपटके अपने मनकी बात कहेहै तो ये सुनें हैं। ऐसो कौनसो काज है जो ये नांय कर सके हैं। इनकी इच्छा होय तो प्रिया-प्रियतमको भी खिलौनेकी भाँति खेलबेको दै सकेंहैं।'

और अपने इस कथनकी पुष्टिमें उन्होंने अपने ही जीवनकी एक रहस्यमय घटनाका वर्णन किया था आनन्दाश्रु बहाते-बहाते। उनका जीवन ऐसी अनेक घटनाओंसे परिपूर्ण था। पर उन घटनाओंका संग्रह करना आसान न था। उनका अधिकांश जीवन जन-संपर्कसे दूर व्रजके बनों और गिरिराजकी गुफाओंमें व्यतीत हुआ था। मैंने बड़े परिश्रमसे जितना संभव हो सका, उनका संग्रहकर उन्हें जीवन-चरित्रके रूपमें ग्रथित किया था।

दूसरी बहूमूल्य वस्तु जो उस बक्समें थी—मेरे एक मित्रकी कई वर्षकी तपश्चर्याका परिणाम। उन्होंने एक बड़े उद्योगपति होते हुए भी अपने व्यस्त जीवनसे लगातार कई वर्षोंतक बहुत-सा समय निकालकर बड़े परिश्रम और लगनके साथ 'चैतन्य-चरितामृत' के अन्तर्गत 'सनातन-शिक्षा' की श्री राधागोविन्दनाथकी विस्तृत टीकाका हिन्दी अनुवाद किया था। छपनेपर वह हिन्दी-जगत्में उनकी एक बड़ी देन होती, क्योंकि हिन्दीमें उस ढंगका वैष्णव-सिद्धान्त और भक्तिका विस्तृत, शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विश्लेषण अबतक नहीं हुआ है।

इन दोनों ग्रन्थोंसे एकाएक एकसाथ हाथ धोकर मेरी स्थिति कुछ वैसी हो गयी, जैसी श्री निवासाचार्यके पुत्रकी हुई थी, जब वे श्रीरूप, सनातन और जीवगोस्वामी आदि द्वारा रचित भक्ति-ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियाँ एक बड़े सन्दूकमें वृन्दावनसे गौड़देश ले जा रहे थे और मार्गमें डाकू उस सन्दूकको छीन ले गये। उनकी भूख-प्यास और नींद तबतकके लिए उड़ गयी थी जब तक सन्दूक उन्हें अनायास राजा वीर हम्मीरके यहाँ प्राप्त नहीं हो गयी। मेरी भी भूख-प्यास जाती रही और प्राण जैसे सूख गये। पर आशाने सांस नहीं छोड़ी। वह मुझे स्टेशन-मास्टरके पास ले गयी उनके कमरेमें।

स्टेशन-मास्टर टेलीफोनपर बातें कर रहे थे। मैं खड़ा रहा प्रतीक्षामें। जैसे ही उन्होंने टेलीफोन रखा, मैंने संक्षेपमें अपनी बात कहते हुए प्रार्थना की: 'कोसीके स्टेशन-मास्टरसे कह दें कि गाड़ी कोसी पहुँचते ही मेरे सामानको जो, टू-टायरमें दरवाजेके पास रखा है, उतार लें।'

'मैं गाड़ियोंको देख रहा हूँ। मुझे इस समय बिलकुल फुरसत नहीं!' कहकर उन्होंने फिर टेलीफोन उठाया और गाड़ियोंकी बात शुरू कर दी। मुझे लगा कि जैसे मैंने उनसे फिर कुछ कहा, तो गाड़ियाँ लड़ जायेंगी।

कमरेसे बाहर निकल रहा था कि असिस्टेंट स्टेशन-मास्टरने प्रवेश किया। उन्हें देखते ही जी चाहा कि सारा गुस्सा उनपर उतार दूँ। पर कुछ सोचकर विनम्रतापूर्वक कहा:

'देखिये, आपने गाड़ी नहीं रोकी। मेरा सामान चला गया। अब कृपाकर अगले स्टेशनपर उसे उतरवा लेनेकी व्यवस्था कर दीजिये।'

'जब आप स्वयं यहाँ ही अपना सामान नहीं उतार सके, तो अगले स्टेशनपर, जहाँ गाड़ी बहुत कम देर रुकती है, कोई उसे कैसे उतार लेगा?'

'जो भी हो, सामान सुरक्षित उतरवा लेनेकी जिम्मेदारी रेलवेकी है और विशेष रूपसे आपकी। आप चाहे अगले स्टेशनपर उसे उतरवानेकी व्यवस्था करें या और कहीं।' —मैंने अपना धैर्य सम्भालनेकी व्यर्थ चेष्टा करते हुए कहा।

जिम्मेदारीके साथ अपने आपको नत्थी होता देख वे कुछ अनुकूल रुख अपनाते हुए बोले : 'फरीदाबाद टेलीफोन कर सकता हूँ, उसके आगे नहीं ।'

'तो ऐसा ही कीजिये । पर यदि फरीदाबादमें भी सामान न उतर सके तो इतनी और कृपा कीजिये कि मुझे किसी तरह ८ बजे 'ताज एक्सप्रेस'में बिठा दीजिये जिससे मैं दिल्ली चला जाऊँ । मेरे पास टिकटके लिए भी पूरे पैसे नहीं हैं ।'

'ताजमें सारी सीटें रिजर्व रहती हैं । बिना टिकट बैठानेका सवाल ही नहीं रहता । फिर आप दिल्ली जाकर करेंगे भी क्या ? इतनी भीड़में तो खास तौरसे ऐसे ही लोग चलते हैं जो नजर बचते ही माल पार कर दें । क्या वे आपके दिल्ली पहुँचनेतक आपका लावारिश सामान ज्यों-का-त्यों पड़ा रहने देंगे ?'

मेरी आशाका दीप, जो पहले ही धीमा पड़ चुका था, अब जैसे बुझने जा रहा था । उसी समय एक सज्जन, जो लगभग मेरी ही उम्रके थे और उस कमरेमें बैठे मेरी बातें सुन रहे थे, मेरे पास आये और हाथ पकड़कर बोले : 'आइये, मैं आपकी मदद करूँगा ।'

वे मुझे स्टेशनके एक दूसरे आफिसरके कमरेमें ले गये । हम लोगोंने जैसे ही कमरेमें प्रवेश किया, आफिसरने उठकर अभिनन्दन करते हुए कहा :

'कैसे कष्ट किया मास्टर साहब ?'

मास्टर साहबने कहा : 'बेटा, एक जरूरी काम है !' और फिर सारी स्थिति बताते हुए मेरी यथासम्भव सहायता करनेका आग्रह किया ।

आफिसरने कहा : 'आप चिन्ता न करें, मैं अभी सारी व्यवस्था किये देता हूँ ।'

उन्होंने कोसी टेलीफोन किया । गाड़ी कोसी-स्टेशन पार कर चुकी, तो वहाँसे सूचना आयी कि सामानका कुछ पता नहीं चला । तब उन्होंने फरीदाबाद टेलीफोन किया अपने एक मित्रको और उनसे कहा कि 'वे टू-टायरके कण्डेक्टरसे मेरा सामान नयी दिल्लीके स्टेशन-मास्टरको सुपुर्द करनेको कह दें, जिससे मैं ताज एक्सप्रेससे जाकर उसे ले लूँ ।'

थोड़ी देरमें ताज आ गयी और मुझे ले जाकर किसी प्रकार प्रवेश भी दिला दिया उन्होंने । गाड़ीमें सारी सीटें भरी देख मैं एक कोनेमें खड़ा हो गया । एक सज्जनने पूछा : 'आपकी सीटका क्या नम्बर है ?'

मैंने कहा : 'मेरे पास टिकट नहीं है ।'

उन्होंने एकबार ऊपरसे नीचेतक मुझे देखा । फिर अपनी सीटपर खिसककर जगह करते हुए कहा : 'यहाँ बैठ जाइये ।' मैं सिमटकर उनके पास बैठ गया ।

'मुझे भी आगरेमें बड़ी मुश्किलसे टिकट मिला । नहीं मिलता तो क्या करता ? बगैर टिकट ही जाता । परेड़ तो किसी प्रकार देखनी ही थी । आप भी परेड़ देखने जा रहे हैं न ?'

बात वहीं काट देनेके लिए मैंने कहा : 'जी, हाँ' और अन्तर्मुख हो बैठ गया । अन्तर्मुख होते ही देखा कि मैं दो गाड़ियोंमें सफर कर रहा हूँ—बैठा ताज एक्स्प्रेसमें हूँ, पर झाँक रहा हूँ विचार एक्स्प्रेसकी खिड़कीसे, जहाँसे तरह-तरहके ऊबड़-खाबड़ दृश्य तेजीसे भागते नजर आ रहे हैं ।

'तूफान आगे जाकर और भी लेट हो सकती है। ऐसा हुआ तो मेरा सामान शायद मिल ही जाय। ऐसा न हुआ तो फिर राम मालिक है, क्योंकि फरीदाबादमें उस आदमीके कण्डेक्टरसे इतनी भीड़-भाड़में मिल सकनेकीकी सम्भावना कम हो जान पड़ती है।

और यदि सामान न मिला तो आगे कैसी बीतेगी विना टिकटके, विना पैसे-कौड़ीके और विना ओढ़ने-विछानेके कपड़ोंके इस कड़ाकेकी सर्दीमें? मुझे गाड़ीसे उतरना नहीं चाहिए था। पर मैं क्या जानता था कि टू-टायरमें भी यात्रियोंकी बाढ़ आ जायगी। पर कण्डक्टर किसलिए था? वह अकेला भीड़के रेलेको रोकता कैसे? वेचारा जान छिपाकर कहीं बैठा होगा।

× × ×

गाड़ी नयी दिल्लीके स्टेशनपर जा खड़ी हुई। उस समय रातके साढ़े दस वजे थे। उतरते ही पता चला कि तूफान एक घण्टा पहले पुरानी दिल्ली जा चुकी है। मैं लम्वे कदम रखता स्टेशन-मास्टरके दफ्तरमें पहुँचा। उनसे पूछा :

'क्या मेरा एक वक्स और विस्तर तूफान गाड़ीके टू-टायरके कंडक्टर दे गये हैं?'

'नहीं, मुझे नहीं दे गये।'

'तो क्या पुरानी दिल्ली जानेके लिए तुरन्त कोई गाड़ी है?'

'कोई नहीं।'

टैक्सीसे पुरानी दिल्ली जानेके लिए मैं गेटकी तरफ जाने लगा। सोचा—टिकट-कण्डेक्टर को समझा-वुझाकर वाहर निकल जाऊँगा। क्या वह मेरा चेहरा-मोहड़ा देखकर नहीं समझ जायगा कि मैं जान-बूझकर विना टिकट चलनेवालोंमें नहीं हूँ? फिर मेरे विना टिकट चलनेकी जिम्मेदार रेलवे ही तो है। यदि उसने कहा कि 'विना टिकट चलनेवाले सब ऐसी ही कोई-न-कोई कहानी गढ़ लाते हैं' तब? तब मैं उससे क्या-क्या कहकर उसपर कावू पानेकी कोशिश करूँगा, सोचते हुए उससे मुठभेड़के लिए तैयार हो उसी तरफ बढ़ा। पर जैसे ही गेटपर पहुँचा, वह न जाने किसके आदेशसे या कौन-सी मजबूरीसे शायद क्षणभरके लिए भीतर आया। मैं उसी समय वाहर हो लिया।

वाहर निकलकर एक लम्वी साँस ली और पब्लिक कॉल-आफिसकी तरह बढ़ गया। वहाँसे अपने मित्र श्री जयदयालजी डालमियाके यहाँ टेलीफोन किया। टेलीफ़ोनपर चौकीदार था। मैंने कहा :

'मैं नयी दिल्ली स्टेशनसे बोल रहा हूँ। डालमियाजीके पास आया हूँ। उन्हें खबर कर सकोगे कि मुझे एक गाड़ी भेज दें?'

'ऐसा है जी! इस समय ग्यारह वजे हैं। सब सो रहे हैं। आप गेस्ट-हाउस चले जायँ तो ठीक हो जी!'—उसने विनयपूर्वक कहा।

मैंने टैक्सीस्टैण्डपर जाकर एक टैक्सीवालेसे कहा : 'पुरानी दिल्ली-स्टेशन होते हुए तिलकमार्गपर डालमियाजीके गेस्ट-हाउस जाना है।'

'बैठिये'—उसने कहा और मैं गाड़ीमें वैठ गया। बैठते-बैठते विचार आया कि गेस्ट-हाउसमें भी सब सोते हों, तो टैक्सीवालेके लिए पैसे किससे लूँगा? पर विचार और कर्मकी

इस दौड़में विचार बहुत पीछे पड़ गया था और कर्मको अवकाश ही न था मुड़कर उसकी ओर देखनेका।

टैक्सी कुछ ही देरमें पुरानी दिल्ली-स्टेशनके बाहर जा लगी। मैंने स्टेशन-मास्टरके कमरेमें जाकर उनसे पूछा:

'मेरा एक बक्स और बिस्तरा तूफान गाड़ीमें रह गया था। क्या आपके पास उसकी कोई सूचना है?'

'मेरे पास कोई सूचना नहीं है। आप टी० सी० आर०के दफ्तरमें देख लें।'

टी० सी० आर०के दफ्तरमें भी कुछ पता न लगा। इंचार्जने कहा:

'लास्ट प्रापर्टीके दफ्तरमें देख लीजिये।'

लास्ट-प्रापर्टीका दफ्तर प्लेटफार्मके आखिरी सिरेपर था। मैं दोनों जेबोंमें हाथ डाले ठंडमें सी-सी करता वहाँ पहुँचा। देखा, एक बड़े कमरेमें चारों ओर पत्थरकी आलमारियोंमें बहुत-से बक्स और बिस्तर रखे हैं। मैं एक-एकको आँखें गाड़कर देखता कमरे भर घूम आया, पर मेरा बक्स और बिस्तर कहीं न दीखे।

इसे अपने भाग्यके अन्तिम निर्णयका एलान समझ मैं सीधे वहाँ जाने लगा, जहाँ टैक्सी मेरा इन्तजार कर रही थी। याद आ रहा था गीताका उपदेश कि सुख-दुःख, हानि-लाभको समान मानकर सभी स्थितियोंमें शान्त और स्थिर रहना चाहिए। पर ग्रन्थोंकी हानि हृदयको कचोटे जा रही थी। विवेक जाग रहा था, पर विषाद उसे अंगूठा दिखा रहा था। भगवान्की भी याद आ रही थी, पर इस अभिमानके साथ कि क्या वे सब कुछ देख नहीं रहे हैं? क्या वे जान नहीं रहे हैं?

गेटतक पहुँचा ही था कि एक अधेड़-से कुछ ऊपरकी उम्रका रेल-कर्मचारी लम्बा काला कोट पहने हाथमें लालटेन हिलाता दूसरी ओरसे आता दीखा। होगा कोई डिब्बोंकी शंटिंग करनेवाला या सिगनलपर काम करनेवाला। जब वह कुछ निकट आया, मैं न जाने क्यों उससे कह बैठा:

'भइया! एक बात पूछनी है।'

वह तत्परतासे मेरी ओर देखने लगा। मैंने अपनी कहानी शुरू कर दी। मैं जान रहा था कि इतना कुछ कर लेनेके बाद उससे व्यर्थ ही यह सब कहकर बेवकूफी कर रहा हूँ। फिर भी कह रहा था और वह ध्यानसे सुन रहा था। कहानी समाप्त कर मैं उससे कुछ पूछूँ कि वह एक ओर इशारा करते हुए बोला: 'आप बारह नम्बर प्लेट फार्मपर ट्रेन-एक्जामिनरके दफ्तरमें और देख लीजिये ये', और आगे बढ़ गया।

मैं भी बारह नम्बर प्लेट फार्मकी ओर चल दिया। वहाँ जाकर देखा कि आफिस जैसी कोई चीज ही नहीं है। प्लेटफार्मके दोनों तरफ रेलकी लाइनें हैं और कुछ नहीं। अपनी बेवकूफीपर अपने आपको कोसता फिर गेटकी ओर लौट पड़ा। गेटके निकट फिर वही व्यक्ति जैसे मेरा रास्ता रोके दीखा।

'बारह नम्बरपर कहाँ कोई दफ्तर है?—!'—मैंने कहा।

'पुलके नीचे है न' उसने गंभीर स्वरमें उत्तर दिया।

मैं फिर गया बारह नम्बरके प्लेटफार्मकी तरफ। पुलके निकट पहुँचनेपर उसके निचले हिस्सेका ध्यानसे निरीक्षण करने लगा। सीढ़ियोंके नीचे दीख पड़ी एक बहुत छोटी कोठरी। यह तो कोई दफ्फर नहीं हो सकता, मैंने सोचा। उसके दरवाजेके बायें पल्लेको, जो बन्द था, हलका-सा धक्का दिया तो क्या देखता हूँ कि उसके ठीक पीछे रखा है—मेरा बक्स और बिस्तर!

एक लम्बी साँसके साथ मेरा हाथ वक्षसे जा लगा। कुछ देर वैसे ही खड़ा रह गया आँखें सामानपर टेके। फिर उस आदमीसे, जो कोठरीके भीतर बैठा मुझे गौरसे देख रहा था, कहा: 'यह सामान मेरा है।' उसे यह विश्वास दिलानेमें मुझे देर न लगी, क्योंकि बक्सकी चाबी मेरे पास थी। लिखा-पढ़ीकी खानापूरी कर और कुलीके साथ सामान ले मैं टैक्सीकी तरफ जाने लगा। रास्तेमें उत्सुकतासे चारों ओर देखता गया, उस लालटेनवाले रेल-कर्मचारीको! पर वह कहीं न दीखा।

स्टेशनसे बाहर निकला तो घड़ीमें बारह बज रहे थे। टैक्सीपर सामान रख कर २ नम्बर तिलकमार्गको चल दिया। वहाँ पहुँचकर देखा, कोठीमें सन्नाटा छाया है। गाड़ी गेस्ट-हाउसके सामने खड़ीकर चारों तरफ घूम आया, पर कोई नजर न आया। ध्यान पाया कि इसी कम्पाउंडकी दूसरी कोठीमें मेरे मित्र श्री रामनिवासजी ढंढारिया रहने लगे हैं। मैंने वहाँ जाकर आवाज दी, तो वे तुरन्त निकल आये। मुझे बिना सूचनाके असमय पहुँचा देख बोले:

'इस समय कैसे? मैं तो आज विशेष कारणसे जाग रहा था। सोया होता तो आपको कितनी परेशानी होती!'

'विशेष कारणकी सही जानकारी तो आपको अब हुई होगी।' मैंने उनके जागते रहनेकी बातको पिछली घटनाओंकी श्रृंखलामें ही एक सार्थक और अन्तिम कड़ीके रूपमें ग्रहण करते हुए कहा।

फिर ढंढारियाजीकी आवभगत, उनसे बातचीत! दूसरे दिन डालमियाजीका आतिथ्य और उनके साथ टी० वी० पर परेडका अवलोकन आदि कार्यक्रमोंकी श्रृंखला यंत्रवत् चलती रही। पर मनको आलोड़ित करती रही चेतनाके स्तरपर रह-रहकर उभरते इन प्रश्नोंकी श्रृंखला:

'वे मास्टर साहब कैसे उसी समय स्टेशन-मास्टरके कमरेमें उपस्थित थे जब मुझे दिल्ली जानेका कोई साधन नहीं दीख रहा था और कैसे वे एकदम प्रेरित हुए थे मेरी सहायता करने, जैसे मैं उनका कितना प्रिय था? कैसे ठीक उसी समय नयी दिल्लीके स्टेशनपर 'टिकट-कलेक्टरको मेरे रास्तेसे हटना पड़ गया, जब मैं रोक लिये जानेकी आशंकाके साथ उसकी तरफ बढ़ रहा था? कैसे उसी समय जब पुरुषार्थ सारी कोशिश कर हार चुका था और मैं स्टेशनसे वापस आ रहा था, वह लालटेनवाला व्यक्ति मुझे ठीक वहाँ जानेका निर्देश दे गया जहाँ मेरा सामना रखा था? कैसे वही व्यक्ति फिर मुझे निर्देश देनेको ठीक उसी समय मेरे रास्तेमें आ गया, जब मैं अपने सामानके इतना निकट पहुँचकर भी खाली हाथ वापस चला जा रहा था? कैसे वह विशेष कारण उसी दिन उपस्थित हुआ जिसने ढंढारियाजीको

वेदकी दृष्टिमें पानी !

आपश्च विश्वभेषजीः

आचार्य विनोबा भावे

★

इस देशमें हम लोग नदियोंको 'माता' मानते हैं। अपनी कन्याओंके नाम भी गंगा, कृष्णा, गोदावरी आदि नदियोंके नामोंपर रखते हैं। हमारे देशमें पानीके प्रति इतनी विलक्षण श्रद्धा है कि जहाँ-जहाँ नदियाँ हैं, वहीं हमने तीर्थक्षेत्र बना लिये हैं। ग्रहण और अन्य पर्वोंके अवसरोंपर लाखों लोग वहां अपने-अपने घर-द्वार छोड़कर नहाने जाते हैं। विगत कुम्भ-मेलेके समय ४० लाखों लोगोंने गंगा-स्नान किया।

कुछ लोग समझते हैं कि 'यह सारी मूर्खोंकी जमात है। गंगा नहानेसे हमें कुछ भी हाथ नहीं लगता, बेकार पैसे खर्च होते हैं। पुराने जमानेसे ऐसी कितनी ही अन्धश्रद्धाएँ चल पड़ी हैं।' लेकिन सोचनेकी बात है कि कुम्भमेलेमें जुटनेवाले लोग मामूली नहीं होते। यूरोपके किसी छोटे राष्ट्रकी जनसंख्या-जितने लोग उस अवसरपर नहाने पहुँचते हैं। क्या उन सभी घर-द्वार छोड़ नदी नहाने जानेवालोंको मूर्ख माना जायगा ? सच तो यह है कि हिन्दुस्तानमें दस हजार वर्षोंसे यह परम्परा चली आ रही है। इसलिए हिन्दुस्तानियोंकी यह कथित सनक कभी मिट नहीं सकती।

उतनी रातमें तबतक जागते रहनेको विवश किया था जबतक कि मैं उनके निवास-स्थानपर पहुँच नहीं गया ?'

आज भी ये ही प्रश्न मेरे मन-मानसमें तैरते हुए जब-कभी उथल-पुथल मचाने लगाते हैं, बुद्धि इनका समाधान कर देती है 'यह कहकर कि यह था घटनाओंका एक अपूर्व आकस्मिक संयोग !' और कुछ नहीं।

पर मैं नहीं जानता कि जब-जब यह प्रश्न मेरे स्मृति-पटलपर जागते हैं, क्यों मेरे नेत्र सजल हो जाते हैं और २५ जनवरीकी घटनाएँ मेरे सम्मुख आने लगती है एक नया रूप लेकर, जिसमें ये पाँचों प्रश्न पाँच उंगलियाँ बन जाते हैं आँख-मिचौनीके एक खिलाड़ीको तरह, जो चुपकेसे आता है और बरबस मेरी आँखें मींच लेता है। एकाएक अंधियारा मुझे घेर लेता है। पर उसकी कोमल उंगलियोंके अप्राकृत स्पर्शसे नेत्रोंपर नयी क्रिया होती है और अंधकारसे फूट पड़ती हैं नयी चेतनाकी किरणें, जिनके दिव्य-प्रकाशमें उसकी आँख-मिचौनीके सिवा और कुछ नहीं दीखता !

जलमें सत्यासत्य-परीक्षक प्रभुका निवास

विज्ञान कितना ही सिखलाये कि पानी मात्र हाइड्रोजन ऑक्सीजनका योग है। फिर भी हम लोग यही समझते रहेंगे कि वह राम-लक्ष्मणका योग है। वेदमें एक मन्त्र आता है :

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्।

अर्थात् लोगोंके सत्य और झूठकी परीक्षा करनेवाला परमात्मा जलमें निवास करता है। हमारे यहाँ कहते हैं कि 'जल हाथमें लेकर सच बोलो', यानी माना जाता है कि जल हाथमें लेनेवाला मनुष्य कभी झूठ नहीं बोल सकता। जलकी इतनी अधिक प्रतिष्ठा होनेका कारण यही है कि वह सत्यासत्यकी परीक्षा करता है। इस भोलेपनको आप कितना ही धो डालें, फिर भी जिस तरह काले लोगोंकी काली चमड़ीको साबुनसे लाख धोनेपर भी उसका काला रंग नहीं मिटता, उसी तरह हमारा यह भोलापन कभी नहीं मिट सकता।

नदी परमात्माकी बहती करुणा

भारतमें पानीके विषयमें इतनी अधिक श्रद्धा क्यों है? बात यह है कि नदियोंमें परमात्माकी करुणाके दर्शन होते हैं। भारतने इस तत्त्वका दर्शन किया है कि नदीका अर्थ है, परमात्माकी बहती हुई करुणा! आप लोग नदीके तटपर रहते हैं और कंजूस बनकर थोड़ी-कौड़ी माया जोड़ते हैं। थोड़े-से पैसेके लिए अपने भाइयोंसे लड़ते-झगड़ते हैं। लेकिन आप रोज ही देखते होंगे कि पानी यहाँसे सतत आगे जाता और पीछेसे पानी आता ही रहता है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि देते रहनेसे मिलता ही रहता है। जल ईश्वर है, वह भेदभाव जानता ही नहीं। ज्ञानदेवने कहा है कि 'नदी कभी यह विचार नहीं करती कि गायकी ही प्यास बुझायी जाय और क्रूर होनेके कारण शेरकी प्यास न बुझायी जाय। कारण वह ईश्वरकी करुणा है, जो सबको समान सुलभ होती हैं।'

जलसे शिक्षा लें

अतिष्ठन्तीनाम्, अनिवेषणानाम्—अर्थात् पानी कहीं नहीं रुकता। उसे घर-द्वार कुछ भी नहीं है। इसीलिए उसे संन्यासीकी उपमा दी जाती है।

हेरित पाप-ताप पोषित सकळा।
समुद्रा जाय आप, गङ्गेचे॥

गङ्गानदीको जाना तो है समुद्रके पास, लेकिन वह अपनी ध्येयसिद्धिके कार्यके बीच तीरपर स्थित असंख्य वृक्षोंको भी पानी पिलाती हुई जाती है। इसी तरह साधु पुरुषोंको जाना होता है परमात्मरूप समुद्रके पास, पर वे बीचमें आनेवाले असंख्य जीवोंकी सेवा करते हुए जाते हैं। पानीमें अखण्ड प्रवाह, परोपकार, करुणा, उदारता, शीतलता ये सारे गुण हमें दिखायी पड़ते हैं। मानव कितना ही सन्तप्त क्यों न हो, ठंडे जलसे स्नान करते ही एकदम शान्त हो जाता है।

एकनाथ महाराज काशीसे अपने माता-पिताके लिए गङ्गाजल बहँगीपर ढो ला रहे थे। लेकिन पैठण पहुँचनेपर रेतमें प्यासके कारणके मरते गदहेको देखा तो उन्होंने वह सारा जल उसीपर उडेल दिया। आखिर उन्हें यह बुद्धि किसने दी? कहना होगा, पानीने ही। पानी बतलाता है कि उदार बनें। वह मानवको पुण्य-कर्म करनेकी प्रेरणा देता रहता है।

संस्कृतमें 'अप्' शब्दका एक अर्थ है पानी तो दूसरा अर्थ है श्रद्धा। ज्ञानदेवने कहा है कि 'सत्य पानी जैसा होना चाहिए। पानी इतना मृदु होता है कि शरीरके सबसे नाजुक अवयव आँखोंकी पुतलियोंको भी वह नहीं गड़ता! दूसरी ओर वह इतना कठोर भी है कि पत्थरको भी फोड़ देता है। इसी तरह सत्य भी एक ओर अत्यन्त मृदु रहे—लोगोंको रिझानेवाला, आनन्द देनेवाला, शीतल और नरम रहे, तो दूसरी ओर संशयके छेदनमें अत्यन्त प्रखरता भी दिखलाये।' इस तरह ऋषिने एक नदी की पृष्ठभूमिपर पानीके असंख्य गुणोंकी कल्पनाएँ की हैं।

जल : विश्व-भेषज

एक ऋषि बीमार पड़ा तो उसने सोमराजासे कहा : 'प्रभो, सुनता आ रहा हूँ कि आपने असंख्य वनस्पतियाँ भर रखी हैं। तो, मुझे भी कोई औषधि देकर स्वस्थ बनायेंगे।' इसपर सोम राजाने कहा :

अप्सु मे सोमो अब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वसम्भुवम् आपश्च विश्वभेषजीः॥

अर्थात् 'पानोमें सारी वनस्पतियाँ भरी हैं, इसलिए तुम पानीका उपयोग करो।'

सिर्फ पानीसे भी अनेक रोग अच्छे होते देखे गये है। चिकित्सा-पद्धतियोंमें जल-चिकित्सा भी एक प्रमुख अङ्ग है। आवश्यकतानुसार कभी गरम तो कभी ठंड़ा पानी लिया जाय, तो फिर किसी औषधिकी जरूरत ही नहीं पड़ती। सारा 'मेटेरिया-मेडिका' गोदावरीके इस जलमें फेंक दें। इन दिनों पाश्चात्योंने भी जल-चिकित्साका एक नया पन्थच लाया है। कहते हैं : "'टाइफाइड' जैसे रोगमें कुछ भी खानेको न दीजिये, सिर्फ घण्टे-घण्टेभरसे पानी पिलाते जाइये तो रोग अच्छा हो जाता है।"

एक प्रत्यक्ष घटना

हमारे दादाजी महादेवका पूजन किया करते थे। एकबार पूजाके समय उनका शरीर काँपने लगा और उन्हें सिरहन हो उठी। उनकी पूजा करीब दो-तीन घण्टे चला करती थी। वे तत्काल उठे और पासके कुएँमें कूद पड़े। दादीको लगा कि 'अरे, यह क्या हो गया?' वे बड़े ही कुशल तैराकू थे। पाँच-सात मिनट तैरकर ऊपर निकल आये और देह पोंछकर पुनः पूजामें बैठ गये। यह बात मैंने अपनी आँखों देखी है। भले ही आप विश्वास करें या न करें, लम्बी पदयात्रामें मुझे यही अनुभव हुआ कि पानीमें भींगनेसे कुछ भी हानि नहीं होती, क्योंकि उसमें बहुत सारी औषधियाँ भरी हैं। इसीलिए वेदने उसे 'विश्वभेषजीः' यह सम्मानकी पदवी दी है। ●

द्वेषाग्नि कैसे बुझेगी ?

श्री वियोगी हरि

★

नहि वैरेण वैराणि समन्तीध कदाचन ।
अवैरेण वैराणि एस धम्मः सनातनः ॥

—भगवान् बुद्ध

सभी-कुछ सदा सर्वथा जल रहा है। प्रतिक्षण जलनेवाली यह आग है। कौन-सा 'फायर ब्रिगेड' इसे बुझाने आये? आये तो बुझा भी सकेगा क्या इसे ? बाहर लगी आग तो यह है नहीं। यह तो अन्दर-अन्दरकी आग है जो सुलग रही है, धुंधला रही है, न जाने कबसे ? अन्दरसे शुरू होकर फैल गयी है यह बाहर भी दूर-दूरतक। लम्बी-लम्बी लपटें उगल रही है यह, सब-कुछ निगल जानेको—सब-कुछ, पराया और अपना भी, भस्म कर देनेको। सारे ब्रह्माण्डमें लगी आग कोई बुझा भी दे, पर पिण्डमें सुलग रही आगका शमन कैसे किया जाय? आश्चर्य है कि फिर भी हम हँसते हैं और आनन्द मना रहे हैं! कोनु हासो किमानन्दो !

मुश्किल है, अपनी ही पैदा की हुई और अपने ही घरमें लगायी इस आगका बुझाना। आग लगायी तो इसलिए थी कि कोई दूसरा जले और उसका सर्वस जलकर खाक हो जाय। पर हुआ उलटा ही। वह खुद ही जल रहा है, और उसकी आँखोंके सामने दिन-रात उसका सब-कुछ जल-बल रहा है। मान-सम्मान चाहा था दूसरोंसे। वह न मिला तो अन्तर जलने लगा। 'चाह' पूरी न हुई और 'अन-चाह' गलेसे आ लिपटी। वह आग कैसे बुझे और शान्ति कैसे मिले, जब कि पल-पलपर द्वेषका काला बिच्छू डंक मार रहा है कि अमुकने मुझे डाँटा था, मुझे नीचा दिखाया था और मेरा सब-कुछ हर लिया था ?'

जिस किसीने ऐसा किया था, उसतक तो इस आगकी आँच भी नहीं पहुँच रही। वह तो चैनसे सोता रहता है। यह आग तो उसीको हर क्षण जलाती रहती है, जो उन यादोंको अपने अन्तरमें सँजोकर रख रहा है। उस व्यक्तिकी या उसकी किसी वस्तुकी, या उस स्थानकी जब चर्चा होती है तब मनमें आग सुलग उठती है और रोम-रोम जलने लगता है। अच्छी बात भी अप्रिय लगती है और सुन्दर स्थान भी तब असुन्दर प्रतीत होता है। वह पुरानी याद सब कुछ अप्रिय और घृणास्पद बना देती है। भगवान् बुद्धके इस कथनको सामने रखकर ही द्वेषकी आग शान्त हो सकती है कि 'अमुकने मुझे डाँटा, मुझे मारा, मुझे

जीत लिया और मेरा सब कुछ हार लिया—ऐसी-ऐसी बातें जो मनमें नहीं लाते, उनको याद नहीं करते···।'

कहा जाता है कि यह तो ऐसे लोगोंको दिया गया उपदेश है जो अच्छे तो हैं, लेकिन दुनियाके कामके नहीं, जिनके अन्दर प्रतिशोधकी भावना नहीं होती, जो बदला लेना नहीं जानते। अर्थात् जिन लोगोंमें तेजस् नहीं और पुरुषार्थ नहीं, उन्हींको मान-सम्मान न पाने और अपमान भुला देनेकी बात शोभा देती है। मतलब यह कि वीर्यवान्को तो द्वेषाग्निसे ही सदा जलते रहना चाहिए। आग बुझाकर तो उसका अस्तित्व न रह जायगा, अतः उसे शान्ति नहीं चाहिए। द्वेष और अशान्तिकी आगमें झुलसते रहना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। यह भी एक मत है, जिसे हमेशासे बहुत बड़ी बहुमति या सहमति प्राप्त है।

फिर भी, यह मत 'बहुमान्य' होनेपर भी अन्ततोगत्वा 'स्वमान्य' नहीं बन जाता। सतत जलानेवाला व्यक्ति कभी-न-कभी उपशमन तो चाहेगा ही। युद्धोन्मत्त और युद्धरत राष्ट्र भी सदा ऐसी स्थितिमें नहीं रहना चाहते। क्षणस्थायी शत्रुको अन्ततः जिन्हें मित्रमें परिणत करना ही होता है। फिर अन्दरके स्वनिर्मित शत्रुको कोई कबतक शत्रु बनाये रखना चाहेगा? आखिर वह द्वेषाग्निसे कबतक जलता-बलता रहैगा? अतः द्वेषसे द्वेष कभी शान्त नहीं होता, वह तो अद्वेषसे ही शान्त होता है—यह सनातन नियम है। इसे कैसे झुठलाया जाय?

●

मधुर मकरंदका

क्रोध सदा होवे निज दोषके निरोध हेतु
काम बसे उरमें मुरारि नन्द-नन्द का,
मोह यह हो कि मन मोहता प्रकाश रहे
श्यामा और श्यामके ललाम मुखचंद का।
सेवारत मैं हूँ, प्रिया-प्रीतम सुसेव्य मेरे
त्याग न हो इस अभिमान सुख-कंद का,
लोभ रहे मेरे मन राधिका गुविंद जू के
पद-अरविंदके मधुर मकरंद का।

श्री 'राम'

मनीषियोंके अभिमतोंके सन्दर्भमें

आज की शिक्षा : सुधार और सुझाव

डॉक्टर गोविन्ददास जी

★

स्वराज्यके बाद हमारे देशका यह काल निर्माण-युगके रूपमें चल रहा है। निर्माण दो प्रकारका हो रहा है : १. भौतिक वस्तुओंका निर्माण और २. नयी पीढ़ीका निर्माण। जहाँतक भौतिक वस्तुओंके निर्माणका सम्बन्ध है, निःसन्देह हमें कुछ दूरतक तो उसमें सफलता मिली है। किन्तु जहाँतक नयी पीढ़ीके निर्माणका सम्बन्ध है, उसमें जरा भी सफलता नही मिली। नयी पीढ़ीका निर्माण बहुत दूरतक शिक्षा पर निर्भर है।

मैं संसारके प्रायः सभी देशोंमें घूमा हूँ। शिक्षासे कुछ अनुराग होनेसे सभी देशोंकी शिक्षा-प्रणालियोंका अध्ययन करनेका प्रयत्न भी किया है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि कोई भी ऐसी शिक्षा-प्रणाली है, जो सर्वथा निर्दोष हो। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि जितने दोष हमारी शिक्षा-प्रणालीमें हैं, उतने दुनियाकी किसी और शिक्षा-प्रणालीमें नहीं।

स्वराज्य मिलते ही नहीं, बल्कि जब हम पराधीन थे उस समय भी इस ओर हमारे मनीषियोंका ध्यान गया था और राष्ट्रिय शिक्षाके अनेक प्रयत्न चले। स्वराज्यके बाद तो हमने इसपर सबसे अधिक ध्यान दिया। सबसे पहले हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णनकी अध्यक्षतामें एक आयोग नियुक्त हुआ। उसके बाद माध्यमिक शिक्षापर विचार करनेके लिए दूसरे आयोगकी नियुक्ति की गयी और अन्तमें एक और आयोग नियुक्त किया गया जिसका उद्देश्य था सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणालीपर ध्यान देना। कहना चाहता हूँ कि यह करीब-करीब उलटी बात हुई। पहले ऐसे आयोगकी नियुक्ति होनी चाहिए थी जो सम्पूर्ण शिक्षापर विचार करता और उसके बाद माध्यमिक शिक्षापर विचार किया जाता तब विश्वविद्यालयकी शिक्षा अपने आप ठीक हो जाती। खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ, लेकिन इतना तो कहना ही पड़ेगा कि इन आयोगोंने भी शिक्षा-प्रणालीमें जो सुधारके सुझाव दिये है, उनमें से एकको भी कार्यरूपमें परिणत नहीं किया गया है। आज इन आयोगोंके प्रतिवेदन मात्र अलमारियोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं और कुछ दिनमें शायद दीमकोंका भी पेट भरें।

बात यह है कि आज हमारे सारे निर्माणका एक ही दृष्टिकोण है और वह है, भौतिक उन्नति। मैं भौतिक उन्नतिके विरुद्ध नहीं। वह अवश्य होनी चाहिए। लेकिन यदि उद्देश्य

केवल भौतिक उन्नति ही हो तो वह एकांगी उन्नति होगी। भारतीय संस्कृति संसारकी सबसे पुरानी संस्कृतियोंमें एक है। संसारकी चार संस्कृतियाँ सबसे पुरानी हैं; १. भारतीय संस्कृति; २. मिस्रकी संस्कृति, ३. चीनकी संस्कृति और ४. यूनानकी संस्कृति। भारतका तो मैं रहनेवाला हूँ और मिस्र, चीन तथा यूनान देखे हैं। उन देशोंमें यदि आप जाकर वहाँके जीवनमें वहाँकी प्राचीन संस्कृतिके दर्शन करना चाहें तो नहीं होंगे। वहाँकी प्राचीन संस्कृति या तो आपको वहाँके खंडहरोंमें दिखाई देगी या अजायबघरोंमें। मात्र भारत ऐसा देश है, जहाँकी प्राचीन संस्कृतिकी परम्परा आजके भारतीय जीवनमें भी है।

हमारी यह संस्कृति धर्मप्राण संस्कृति है। धर्मप्राण संस्कृतिमें 'धर्म' शब्दका बड़े व्यापक रूपमें उपयोग किया गया है। आज धर्मका अनुवाद किया जाता है, 'मजहब' या 'रिलिजन', पर ये दोनों अनुवाद गलत हैं। धर्म तो इतना व्यापक है कि उसमें व्यष्टि और समष्टिका समस्त जीवन आ जाता है। विनोबाजीने एक स्थानपर कहा है कि 'धर्म शब्द इतना विशाल और व्यापक है कि उसके सारे अर्थ बतानेवाला शब्द मैंने आजतक किसी भी भाषामें नहीं पाया।' धर्मके विविध लक्षण हैं। किसी स्थानपर आठ, कहीं दस, कहीं बारह, कहीं पंद्रह तो कहीं उसके सोलह लक्षण बताये गये हैं। श्रीमद्भागवतमें तो तीस लक्षणोंका विवरण है। इसका बड़ा सुन्दर और संक्षिप्त विवरण मनुस्मृतिमें आया है, जहाँ कहा गया है :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धर्मके ये दस लक्षण मनुस्मृति द्वारा बताये गये हैं। एक वाक्यमें भी हमारे यहाँ धर्मके सारे लक्षण आ जाते हैं और वह है : **धारयति इति धर्मः।** इसका अर्थ यह है जो व्यष्टि और समष्टिको सम्पूर्ण जीवनमें धारण करता है, वह धर्म है।

धर्म स्थूलरूपमें दो प्रकारका है : १. सामान्य धर्म, जो कि मानवमात्रके लिए है और २. विशेष धर्म, जो कुछ समाजों या कुछ व्यक्तियोंके लिए होता है। इस विशेष धर्मके पालनके बारेमें श्रीमद्भगवद्गीतामें बहुत कुछ कहा गया है। स्वधर्म, स्वभाव, नियत कर्म, स्वकर्म आदि अनेक शब्दोंका गीतामें प्रयोग हुआ है। वह घोषणा करती है :

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

और भी—

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥

वास्तवमें सभी धर्मोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं। देश, काल और अवसरके अनुसार व्यवहारमें कुछ अन्तर आता है और उसमें हमें अन्तर दीखने लगता है। लेकिन धर्मके सिद्धान्त सब एक-से हैं अगर हम उन सबकी ओर ध्यान दें तो मानना पड़ेगा कि सभी धर्मोंके

अनुसार वही व्यक्ति धार्मिक माना जा सकता है, जिसके मन और कर्ममें दूसरोंका अहित न हो। अतः सदाचार ही धर्म है। धार्मिक विकासके विना मनुष्यका व्यक्तित्व अधूरा रहता है। बिना धर्माचरणके नैतिकताका आना असम्भव है। इसीलिए **आचारः प्रथमो धर्मः** आदि वाक्य हमारे यहाँ आये।

किन्तु हमने तो धर्मका पूरा बहिष्कार ही कर रखा है। अपने संविधानमें हमने धर्मनिरपेक्षताको स्थान क्या दिया, उसका गलत ही अर्थ लगाने लगे और मानने लग गये हैं कि 'अधर्म' ही शायद हमारे लिए श्रेयस्कर है। 'सेक्युलर' शब्दका कदापि यह अर्थ नहीं हो सकता। पश्चिममें सेक्युलर एजुकेशन, सैक्युलर स्टेट आदि शब्दोंका प्रयोग वहाँकी विशिष्ट परिस्थितिके कारण हुआ था। पोप और उनके मातहत पादरियोंने जुल्म किये और उन जुल्मोंके विरोधमें ये शब्द निकले। पोप और पादरियोंका शब्द था 'इकलैंजेस्टिकल'। इसके विरोधमें सेक्युलर शब्दका प्रयोग हुआ था। हमारे देशमें ऐसी परिस्थिति कभी उत्पन्न नहीं हुई। विनोबाजीके शब्द हैं : **हमारी सरकारका सारा चिन्तन अंग्रेजीमें होता है और उसका तर्जुमा करना पड़ता है। इसलिए सेक्युलर शब्दके सम्बन्धमें इतनी गड़बड़ी मची हुई है।**

इसी प्रकार 'साम्प्रदायिकता'का भी गलत अर्थ लगाया जाता है। आज इस शब्दका भी बड़ा ही दुरुपयोग हो रहा है। साम्प्रदायिकताका असल मतलब क्या है ? साम्प्रदायिकताका मतलब धर्मके किसी पथपर चलना है। धर्म बड़ा व्यापक है। उस पथपर चलना पड़ेगा तो किसी न किसी सम्प्रदायको तो लेना ही पड़ेगा। इस प्रकार धर्म और साम्प्रदायिकता, दोनों शब्दोंका बड़ा गलत अर्थ किया जा रहा है। जब हम पराधीन थे, उस समय भी और उसके बाद भी हमने इन दोनों शब्दोंका गलत प्रयोग किया है।

कहा जाता है कि धर्मकी शिक्षामें कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन मैं जो बात आपके सामने रख रहा हूँ, उससे स्पष्ट हो जाता है कि धर्मकी हमारी शिक्षामें नितान्त आवश्यकता है। 'हंटर-आयोग'ने कहा था : **विद्यार्थियोंके नैतिक स्तर उठानेके लिए एक ऐसा पाठ्यग्रन्थ तैयार होना चाहिए जिसमें मानव-धर्मके सारभूत सामान्य सिद्धान्त रखे जायँ।**

स्वाधीनताके बाद सन् १९४८-४९ में 'राधाकृष्णन्-आयोग' नियुक्त हुआ। उसने कहा कि **धार्मिक-शिक्षामें रूढ़ियोंका बहिष्कार कर आध्यात्मिक शिक्षणपर ध्यान देना आवश्यक है।**

१९५९-६० में भी श्री प्रकाशजीकी अध्यक्षतामें गठित धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा-समितिने कहा था :

> जनता परसे धर्मका अंकुश हटते जानेके कारण शिक्षा-जगत् तथा समाजमें बहुतसे दोष आ गये हैं। भारतीय जीवनका आधार 'धर्म' रहा है। आज यह सूत्र ढीला हो रहा है। अतः राष्ट्रका जीवन छिन्न-भिन्न होनेसे रोकनेके लिए धर्मका आधार पुनः तैयार करना होगा, जिसमें नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्योंकी शिक्षा दी जाय।

सन् १९६४ आर १९६६ में जिस कोठारी कमीशनकी नियुक्ति हुई थी उसने कहा था : धर्मका सम्यक् ढङ्गसे विभिन्न विभागों द्वारा अध्ययन कराया जाय तथा इस तरहका साहित्य तैयार हो कि सारे शिक्षा-क्षेत्रमें उन मान्यताओंको प्रभावोत्पादक ढंगसे किस प्रकार प्रयुक्त किया जा सकता है, इसपर विचार हो ।

शिक्षाके सम्बन्धमें हमारे मनीषी क्या कहते हैं उसपर भी थोड़ेसे विचार आपके सामने रखना चाहता हूँ ।

राष्ट्रपिता **महात्मा गांधी** कहते हैं : 'अच्छी शिक्षाके लिए व्यक्तिगत जीवनकी पवित्रता सबसे बड़ी शर्त है । समस्त ज्ञानका उद्देश्य चरित्र-निर्माण होना चाहिए । सब धर्मोंमें हमें जो विभिन्नता देखनेमें आती हैं, उन सबके बीच आधारभूत एकता विद्यमान है और वह है सत्य तथा शुद्धता । धार्मिक शिक्षा अध्यापकोंके धर्मानुकूल आचरणसे दी जा सकती है ।'

महामना पं० **मदनमोहन मालवीय** कहते हैं : 'युवकोंको यह शिक्षा मिलना अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने सामने सर्वोत्तम आदर्श रखें । दूसरेके प्रति हमें ऐसी कोई कृति कदापि नहीं करनी चाहिए, जिसे अगर दूसरा हमारे लिए करे: तो हमें दुःख हो । संक्षेपमें यही सब धर्मोंका सार हैं ।'

गुरुदेव **रवीन्द्रनाथ ठाकुर** ने कहा है : 'मानवताको पहले अधिक विस्तीर्ण भावनाओंसे पूर्ण और बलशाली एकताका अनुभव करना है ।'

योगिराज अरविन्द का कथन है : 'ज्ञान, भक्ति और निष्काम कर्म आर्य-शिक्षाके मूलतत्त्व हैं । हमारा उद्देश्य होना चाहिए ऐसी उपयुक्त शिक्षा देना, जिससे भावी सन्तान ज्ञानी, सत्त्वनिष्ठ, साहसी और विनीत हो ।'

श्रीमती **एनी बेसेंट**का कथन है : 'शिक्षा वही सच्ची शिक्षा है, जो व्यक्तिकी आध्यात्मिक, बौद्धिक, नैतिक तथा शारीरिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करे ।'

विनोबाजी कहते हैं : 'आजकल सेक्युलर स्टेटके नामसे विद्यार्थियोंको धार्मिक साहित्य सिखाया नहीं जाता । वास्तवमें होना यह चाहिए कि सब धर्मोंका सार सिखाया जाय । हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, पारसी, सिख आदि सब धर्मोंका सार निकालकर उनमें जो समान अंश है, सबकी श्रद्धा दृढ़ करनेवाला अंश है. वह सिखाना चाहिए । लेकिन ऐसा नहीं हुआ और शिक्षा-पद्धतिमें सभी धर्मोंको टाला गया । इस शिक्षा-पद्धतिमें सुधार होगा, तभी बचाव होगा ।'

चक्रवर्ती सी० राजगोपालाचार्य कहते हैं : 'शिक्षाका सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य छात्रोंमें दैवीगुणों तथा कर्तव्य-परायणताका विकास करना है । विज्ञानको संसारने एकबार विजेताके रूपमें प्रदर्शित किया था, किन्तु अब वही विज्ञान धर्मका सबसे बड़ा सहयोगी है । उच्च विज्ञान भौतिकवादके दृष्टिकोणको त्यागकर अब आत्मिक-विकास तथा उपनिषदोंकी

भाँति देवत्वकी ओर ले जानेवाला बन रहा है। किन्तु वह धार्मिक विश्वास और दैवी गुणोंके विकासमें तभी सहायता दे सकता है, जब व्यक्तिको बाल्यावस्थासे ही इसके अनुकूल शिक्षित किया जाय।'

वैज्ञानिकोंका यह आधुनिक मत पश्चिमके कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंके कथनसे सिद्ध हो जाता है। सर **जेम्स जॉन** कहते हैं: 'ब्रह्माण्ड एक महान् विचार-सा ज्ञात होता है। विज्ञानका अन्तिम मत उन्नीसवीं सदीके भौतिकवादसे भिन्न होगा।'

सर **ए० एस० एडिंग्टन** का कथन है: 'मैं तो चैतन्यको ही परम सत्य मानता हूँ और प्रकृतिका आविर्भाव चैतन्यसे मानता हूँ।'

श्री **जे० बी० हेल्डन** का मत है: 'यथार्थमें वास्तविक जगत् एक ही है और वह है, आध्यात्मिक जगत्। ब्रह्माण्डका केन्द्रीय तत्त्व प्रकृतिकी कोई शक्ति या भौतिक वस्तु नहीं। वह है मानस और व्यक्तित्व।'

सर **आलीवर लाज** ने कहा है: 'हम ब्रह्माण्डको जितनी दूरतक आध्यात्मिक मानते थे, उससे वह कहीं ज्यादा आध्यात्मिक है। यथार्थ बात यह है कि हम एक आध्यात्मिक विश्वके बीच हैं, जो भौतिकतापर शासन करता है।'

अल्डुअस हक्सले का कथन है: 'विज्ञानका विरोध धर्मसे है ही नहीं। वह है ऐसे दर्शनसे, जिसने धर्मको कुचला है।'

अल्बर्ट आइन्स्टीन का कथन है: 'मैं ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करता हूँ, जो अपनेको अभिव्यक्त करता है।'

भारतीय संस्कृति भौतिक उन्नतिके विरुद्ध नहीं है। हमारे छह दर्शनोंमें एक दर्शनका नाम है 'वैशेषिक दर्शन'। वैशेषिक दर्शनमें एक वाक्य आया है: **यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः**। यहाँ 'अभ्युदय' शब्दका अर्थ है, भौतिक उन्नति और 'निश्रेयस' का मोक्ष-प्राप्ति। किन्तु आज निःश्रेयसको छोड़कर केवल अभ्युदयपर ध्यान केन्द्रित हो गया है, जिससे कल्याण नहीं हो सकता। इसी कारण रिश्वतखोरी, चोरबाजारी आदि अनेक सामाजिक पापोंका उदय हुआ है। पैसेका स्थान ईश्वरसे भी ऊँचा हो गया है। ईश्वरके सम्बन्धमें तो दो मत हैं: एक मत ईश्वरवादी है और दूसरा निरीश्वरवादी। कुछ आस्तिक हैं, तो कुछ नास्तिक। किन्तु पैसेके सम्बन्धमें कोई नास्तिक नहीं है।

> पहले ही कह चुका हूँ कि मैं भौतिक उन्नतिके विरुद्ध नहीं। किन्तु धर्मविहीन अर्थ और उस अर्थ द्वारा कामकी सन्तुष्टि व्यक्ति और समाजको जर्जर बना देते हैं, मानव सच्चा मानव नहीं रहता। स्वामी विवेकानन्द बार-बार एक प्रश्न पूछते थे: 'क्या तुम मनुष्य हो?' इस प्रश्नमें सभी कुछ आ जाता था। ऐसे सच्चे मनुष्यके लिए हज़ारों वर्ष पहले महाभारतमें कहा गया था: **न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।**'

एक अंग्रेज कवि, **गोल्ड स्मिथ,** ने एकबार कहा था : वेल्थ एल्युमुलेट्स ऐंड मैन डिके यही बात फ्रांसके प्रसिद्ध साहित्यकार **रोमांरोलां** ने कही : 'दि मोर आइ हैव, दि लैस आई एम।' हमारी **उपनिषदोंमें** हजारों वर्ष पहले कहा गया था : **न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।** एक प्रसिद्ध महात्मा **श्री रंगनाथनन्द,** ने कहा। 'हम पिछले बीस वर्षोंसे तीन सरकारोंके पीछे दौड़ रहे हैं—सम्पत्ति, सुख और सत्ता।'

हम देखते हैं कि सत्ता और सम्पत्ति प्राप्त करनेके बाद भी जीवनका सुख प्राप्त नहीं होता और उसके कारण हमने भौतिक उन्नतिको अपना आदर्श मान लिया है।

> आज सबसे अधिक चर्चा 'समाजवाद' की है मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाजमें रहनेवाला व्यक्ति है। कोई ऐसा जन्तु नहीं जो जंगलोंमें अकेले सिंहों या भालुओंकी तरह रहता हो। इसलिए समाजवाद तो आयेगा ही। किन्तु समाजवादके जो पोषक हैं, मैं सबके लिए नहीं कहता, अधिकांशकी क्या हालत है ? आप देखें, अधिकांश स्वार्थी हैं और उन्होंने समाजवादके नामपर धन ही किसी न किसी प्रकार प्राप्त करना अपने जीवनका उद्देश्य मान लिया है।

हमारे ऋषि-महर्षियों, तत्त्व-वेत्ताओं और दार्शनिकोंने हज़ारों वर्ष पहले एक खोज की थी कि यथार्थमें यह समस्त सृष्टि एक ही तत्त्व है। जो मैं हूँ, वही आप हैं, वही मैं हूँ। सारी सृष्टि एक है। आजके वैज्ञानिक हज़ारों वर्षोंके बाद भी इसके आगे नहीं जा सके हैं। आजका विज्ञान भी यही मानता है कि यथार्थमें यह समस्त सृष्टि एक ही तत्त्व है। इसीके आधारपर हमारे वेदान्तके कुछ सूत्र निकले थे : **अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म। वसुधैव कुटुम्बकम्** और **सर्वभूतहितेरताः** कहा गया।

भगवद्गीतामें भगवान्ने अर्जुनको बार-बार युद्ध करनेको कहा, लेकिन उसीके साथ यह भी कहा : **निर्वैरः सर्वभूतेषु।** इससे बड़ा कोई समाजवाद नहीं हो सकता है—यह बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ। इसीलिए भारतीय संस्कृति सहिष्णुता, समन्वय और एकताकी संस्कृति रही है। थोड़े दिन पहले डा० **राधाकृष्णन्** ने कहा था :

'Without a spiritual recovery the scientific achievements threaten to destroy us.'

इसके लिए हमें अपनी शिक्षा-प्रणालीमें आमूल परिवर्तन लाना होगा। मुसोलिनी और हिटलरके समयमें इटली और जर्मनीमें वहाँकी नयी पीढ़ीने फासिस्टवाद और नास्तिवादका समर्थन किया था। क्या कारण था ? वहाँकी शिक्षा-प्रणाली इस प्रकारकी बनायी गयी थी तो क्या आप भी ऐसी शिक्षा-प्रणाली नहीं बना सकते, जिसमें आपका और सारे संसारका कल्याण हो।

अन्तमें मैं एक बात और कहना चाहूँगा। शिक्षाका बहुत अधिक सम्बन्ध भाषासे है। १९६७ में भारत सरकारने सभी विश्वविद्यालयोंके कुलपतियोंका एक सम्मेलन बुलाया था।

उसने सर्वसम्मतिसे तय किया कि 'सभी विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा और परीक्षाका माध्यम देशकी भाषा होनी चाहिए।' उन्होंने यह भी तय किया कि 'इसके लिए हमें ग्रन्थोंकी आवश्यकता पड़ेगी, इसलिए भारतीय भाषाओंमें ग्रन्थ-निर्माणका काम बहुत ज़रूरी है।' भारत-सरकारने भी इसको स्वीकार किया और १९६९-७० में एक विभाग चालू किया। १८ करोड़ रुपया इस कामके लिए दिया गया, लेकिन तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हमने देखा कि इस १८ करोड़ रुपयेमेंसे केवल ७०-८० लाख रुपया ही खर्च हुए और इस ८० लाख रुपयोंसे १००-१५० पुस्तकें छपीं। इन पुस्तकोंमें भी २०-२५ स्नातकस्तरकी पुस्तकें हैं। इस प्रकार काम चला तो हमारा साहित्य-निर्माण किस प्रकार हो सकेगा, इसपर विचार करनेकी आवश्यकता है।

आजकल साहित्य-निर्माणका काम जिन सज्जनके पास है, उनकी अयोग्यताके सम्बन्धमें तो एक पुस्तक ही लिखी जा सकती है। शिक्षा-मंत्री स्वयं इस चीज़को देखें और विचार करें कि इतना महत्त्वपूर्ण काम किसके ज़िम्मे किया गया है।

—(लोकसभामें दिया गया व्याख्यान)

तारो, जलते बुझ जाते हो !

अपने-पूर्ण प्रकाशित पथपर
बढ़े चलो अब रुको न पलभर
तब समझोगे अन्धकारमय
पथमें जो संकट पाते हो
तारों जलते बुझ जाते हो ॥

तुम्हें दीप-सा जलना आता
शलभ कुलों-सा बुझना आता
दीपक-से उज्ज्वल होकर भी
क्यों पतंग-पथ अपनाते हो
तारो जलते बुझ जाते हो ॥

अर्धरात्रिकी नीरव बेला
घूम रहा मैं यहाँ अकेला
ये युगचरण जिधर जाते हैं
'तम' या 'तुम' दृगमें आते हो
तारो जलते बुझ जाते हो ॥

—श्री सत्यनारायण द्विवेदी

जिनकी जन्मतिथि अक्षयतृतीया है

पितृभक्त भगवान् परशुराम

श्री उमाशंकर दीक्षित, एम. ए.

★

जब दानवताके थपेड़ोंसे मानवता चीख उठती है, तब जगन्नियन्ता प्रभु समाजमें सुव्यवस्था लानेके लिए या तो किसी महापुरुषमें अपनी आत्माका आविर्भाव करते हैं या स्वयं करुणा-वरुणालय भगवान् **सम्भवामि युगे युगे**की प्रतिज्ञाको कार्यरूप देते हैं। इसी प्रकार एक समय इस अवनिपर धन एवं बलमें प्रमत्त भूप-दलके घोर अत्याचारोंसे वसुन्धरा कराह उठी और मानवताको दानवता ने परास्त कर दिया। उनमें भी हैहयवंशी राजा अधिक मदोन्मत्त थे। उनका शिरोभूषण था अनूप देशका राजा सहस्रबाहु कार्तवीर्य अर्जुन। भगवान्की कृपासे उसे एक सोनेका विमान मिला था। पृथ्वीके सभी प्राणियोंपर उसका प्रभुत्व था। उसके रथकी गतिको कोई भी रोक सकनेमें समर्थ नहीं था। उस रथ और वरदानके प्रभावसे वह देवता, यक्ष, गंधर्व और ऋषि-मुनियोंको कुचल डाल रहा था।

उसी समय महर्षि भृगुके वरदानस्वरूप महातेजस्वी जमदग्नि ऋषिके यहाँ राजा प्रसेनजित्की पुत्री रेणुकाके गर्भसे भगवान् परशुरामका आविर्भाव हुआ। परशुरामकी पितामही सत्यवती और सत्यवतीकी माताका परस्पर भृगुका वरद-चरु बदल जानेसे ब्राह्मण होते हुए भी क्षात्रकर्मी पौत्र परशुरामका जन्म हुआ। वैशाख शु० तृतीया (अक्षयतृतीया) उनकी पावन जन्मतिथि है। इनके चार बड़े भाई क्रमशः रुक्मवान्, सुषेण, वसु और विश्वावसु थे। ये पाँचवें सबसे छोटे भाई थे। लेकिन तेज एवं पराक्रममें सबसे अधिक थे। वे मुनिवेषमें भी धनुष-बाण और परशु धारण करते थे। सुन्दर-गौर शरीरपर भस्म लगाते, विशाल मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण करते थे। विशाल वक्षःस्थल और भुजाएँ उनकी प्रचंड वीरताकी द्योतक थीं।

एकबार परशुरामकी माता रेणुका नदीमें स्नान करने गयी। नदीमें राजा चित्ररथकी जलक्रीड़ाको देखकर उनका मन विकारयुक्त हो गया। त्रिकालज्ञ महर्षि जमदग्निको यह रहस्य ज्ञात होनेपर उन्होंने रेणुकाकी कड़ी भर्त्सना की और चारों बड़े पुत्रोंको अपनी माताका वध करनेकी आज्ञा दी।

किन्तु वे मोहवश ऐसा न कर सके। परशुराम अपने पिताके तेजसे परिचित थे। अतः उन्होंने तत्क्षण रेणुका का शीश परशुसे काट गिराया। पिताने प्रसन्न होकर वर माँगनेके लिए कहा। परम बुद्धिमान् परशुरामने वररूपमें पुनः अपनी माताके जीवनकी याचना की। यह था उनके पितृ-आज्ञा-पालन और मातृ-प्रेमका महान् आदर्श !

एकबार महर्षि जमदग्निके आश्रममें बल एवं गर्वसे प्रमत्त कार्तवीर्य अर्जुन उपस्थित हुआ। परशुरामसहित सभी भाई बाहर गये हुए थे। मुनिपत्नी रेणुकाने कार्तवीर्यका बहुत आदर-सत्कार किया। किन्तु कार्तवीर्यने आदर-सत्कारका कुछ भी मूल्य न समझकर डकराती हुई आश्रमकी होमधेनुके बछड़ेको हरण कर लिया और आश्रमके वृक्षादि भी तोड़ डाले। परशुराम जब आश्रममें लौटकर आये तो उन्हें यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ। उन्होंने होमधेनुको भी आँसू बहाते हुए देखा। बस, फिर क्या था, परशुरामके क्रोधकी सीमा न रही! वे तत्क्षण धनुष-बाण लेकर चल पड़े। उन्होंने सहस्रबाहुसे वीरतापूर्वक युद्ध किया। अपने तेज फरसेसे उसकी सहस्र भुजाओंको खंडित करके उसे मृत्युके मुखमें डाल दिया।

इससे सहस्रबाहुके पुत्र क्रोधित हो उठे और उन्होंने एक दिन अवसर पाकर परशुरामजीकी अनुपस्थितिमें जमदग्निजीके प्राण ले लिये। परशुरामको पिताकी मृत्युसे महान् दुःख हुआ। उन्होंने क्षुब्ध होकर पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेकी भीषण प्रतिज्ञा की।

परशुरामके कालाग्निसदृश क्रोधमें पड़कर कार्तवीर्य अर्जुनके सभी पुत्र भस्म हो गये। जिन-जिन क्षत्रिय-नृपतियोंने उनका पक्ष ग्रहण किया, वे सभी मृत्युके शिकार हुए। इस प्रकार अकेले परशुरामने इक्कीसबार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया तथा उनके रक्तसे समन्त-पंचक क्षेत्रमें पाँच सरोवर भर दिये।

यह था दानवताके मूलोच्छेदका परशुरामका महान् कार्य। परशुरामका व्यक्तित्व बड़ा ही महान् है। उन्होंने सदैव मानवताका ही पोषण किया है। उनका नाम आठ चिरंजीवियोंमें भी आता है, अतः वे अमर हैं। अधिक ध्यानसे परशुरामके व्यक्तित्व एवं उनके चरित्रको समझनेकी चेष्टा की जाय तो, उनका चरित्र महान् अवतारोंके समकक्ष ठहरता है। स्वयं भगवान् रामने भी उनकी महत्ता एवं श्रेष्ठता स्वीकार की है।

देव एक गुण धनुष हमारे। नवगुण परम पुनीत तुम्हारे॥

महाभारतकालमें भी परशुरामने दुर्योधनको विविध कथाएँ सुनाकर उसे कल्याणकारी उपदेश दिये थे। उन्होंने अपने उपदेश द्वारा युद्धाग्निको भी शान्त करनेका प्रयत्न किया। दुर्योधनकी पाण्डवोंसे सन्धि करानेका भरसक प्रयास भी उनके द्वारा हुआ। काशिराजकी पुत्री अम्बाके परित्यक्त किये जानेपर उन्होंने अपने परमप्रिय शिष्य भीष्मपितामहसे बड़ा रोमांचकारी युद्ध भी किया था।

त्यागमें तो परशुरामका नाम सर्वोपरि है। उन्होंने इक्कीसबार पृथ्वीको जीतकर भी अपने रहनेके लिए इन्चभर भी पृथ्वी अपने पास नहीं रखी। सारीकी सारी पृथ्वी उन्होंने ब्राह्मणोंको दानमें दे दी।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि भगवान् परशुराम एक कर्मठ वीरयोद्धा, स्वाभिमानी, त्यागी, तपस्वी, माता-पिताके आज्ञाकारी गुणग्राही, मानवताप्रेमी, परोपकारी एवं आदर्श-चरित्रके महान् पुरुष थे। उनका आदर्श एवं मानवोत्थानका महान् कार्य अत्यन्त उत्कर्ष प्रदान करनेवाला है। ●

शंकराचार्यजयन्तीके उपलक्ष्यमें

आचार्य शङ्कर और भगवान् श्रीकृष्ण

श्रीकृष्णकिङ्कर

वक्तारमासाद्य यमेव नित्यं सरस्वती स्वार्थसमन्विताऽभूत्।
निरस्त-दुस्तर्क-कलङ्कपङ्का नमामि तं शङ्करमर्चिताङ्घ्रिम्॥

अद्वैत वेदान्त सम्प्रदायके प्रतिष्ठापक आद्यशङ्कराचार्यका नाम भूमण्डलमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। इनकी जन्मतिथि वैशाख शुक्ला पञ्चमी मानी जाती है। आचार्यकी अलौकिक और असाधारण प्रतिभाको देखकर पण्डित-समाज इनको भगवान् शङ्करका अवतार मानता है। भारतके सभी प्रधाव स्थानोंमें आचार्य शङ्करका पदार्पण हुआ तथा प्रायः सर्वत्र उनके अनुरक्त भक्त एवं शिष्य-अनुशिष्य मिलते हैं। फिर भी आचार्य-प्रवरकी कोई प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं होती। परवर्ती कालमें कुछ चरिताख्यायिकाएँ अवश्य रची गयीं, तथापि उनसे आचार्यपादके प्रकृत जीवन-वृत्तका निर्धारण करना कठिन है। शङ्करके जीवन-वृत्तान्तको लेकर जितने ग्रन्थ रचे गये हैं, उनमें आनन्दगिरिकृत 'शङ्करदिग्विजय', चिद्विलास यतिका शङ्करविजय तथा माधवाचार्यकृत संक्षेप 'शङ्कर-जय' नामक ग्रन्थ ही प्रधान एवम् उल्लेखनीय हैं। इनके सिवा नीलकण्ठ सदानन्द, परमहंस बालकृष्ण और ब्रह्मानन्द द्वारा विरचित 'लघु-शङ्कर-विजय', तिरुमल्ल दीक्षितका 'शङ्कराभ्युदय' और पुरुषोत्तम भारतीकृत 'शङ्कर-विजय-संग्रह' भी विशेष प्रयोजनीय ग्रन्थ हैं।

माधवीय शङ्करविजयके अनुसार मलवारके अन्तर्गत कालाटीनामक स्थानमें शिवगुरुके औरस पुत्रके रूपमें आचार्य शङ्करका आविर्भाव हुआ। उनकी माताका नाम सतीदेवी था। उन्होंने आठ वर्षकी अवस्थामें गृहत्याग किया। नर्मदाके तटपर गोविन्द योगीसे संन्यासकी दीक्षा ली। आगे चलकर उन्होंने नीलकण्ठ, हरदत्त और भट्टभास्करको तर्कमें परास्त किया। बाणभट्ट, दण्डी और मयूरसे भी उनकी भेंट हुई थी और इन सबको उन्होंने दर्शनका उपदेश दिया था। उन्होंने 'खण्डनखण्डखाद्य'के रचयिता श्रीहर्ष, अभिनवगुप्त, मुरारिमिश्र, उदयनाचार्य, कुमारिलभट्ट, मण्डनमिश्र और प्रभाकरको भी तर्कमें परास्त किया था।

चिद्विलास यतिके शंकर-दिग्विजयमें शङ्कराचार्यकी माताका नाम आर्या अम्बा कहा गया है। पाँच वर्षकी अवस्थामें शङ्करका उपनयन संस्कार हुआ। एक दिन नदीमें

स्नान करते समय एक कुम्भीर (ग्राह) ने इन्हें पकड़ा, किन्तु वे किसी कौशलसे बच गये। तत्पश्चात् संन्यासी होकर हिमालय पर्वतपर जा इन्होंने बदरिकाश्रमका आश्रय लिया। यहीं ये तपस्या-निरत गोविन्दभगवत्पादके शिष्य बन गये और उनके उपदेशानुसार यथाविधि संन्यासाश्रममें प्रविष्ट हुए। कुछ काल पश्चात् भट्टपाद (कुमारिल) से मिले और काश्मीर जाकर उन्होंने मण्डनमिश्रके साथ तर्कयुद्ध किया। अनन्तर शङ्कराचार्यने शृङ्गगिरि और जगन्नाथमें दो मठ स्थापित किये। उनमें क्रमशः सुरेश्वराचार्य और पद्मपादाचार्यको मठकी रक्षामें नियुक्त किया। इसके बाद उन्होंने गुर्जर-प्रान्तीय द्वारकापुरीमें शारदामठकी स्थापना करके वहाँ हस्तामलकको नियुक्त किया। तदन्तर बदरिकाश्रममें ज्योतिर्मठकी स्थापना की और तोटकाचार्यको वहाँका संरक्षक बनाया। अन्तिम समयमें, जब शङ्कराचार्यजी बदरिकाश्रममें ही रहते थे, विष्णुके छठे अवतार श्री दत्तात्रेयजी उनके पास गये और उनका हाथ पकड़कर हिमालयकी एक गुफामें घुसे। इसी स्थानसे शङ्कर शिवके साथ मिलने कैलास गये थे।

आनन्दगिरिद्वारा रचित शङ्कर-दिग्विजयमें जो विवरण मिलता है, वह इस प्रकार है : चिदम्बरम्में सर्वज्ञ नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण अपनी पत्नी कामाक्षीके साथ रहते थे। उन्हें विशिष्टा नामवाली एक विशिष्टरूपगुणसंपन्न कन्या प्राप्त हुई, जिसका विवाह उन्होंने विश्वजित नामके एक ब्राह्मणके साथ कर दिया। जब विशिष्टा गर्भवती थी, उसी समय विश्वजित घरसे विरक्त हो वनमें जाकर तपस्या करने लगे। विशिष्टा पतिवियोगसे व्यथित हो चिदम्बरेश्वर भगवान् शिवकी आराधना करने लगी। यथासमय उसने एक पुत्ररत्नको जन्म दिया। वही पुत्र आगे चलकर शङ्कराचार्यके नामसे विख्यात हुआ।

शङ्कराचार्यके आविर्भाव-कालके सम्बन्धमें पाश्चात्त्य तथा तदनुवर्ती प्राच्य दोनों देशोंके विद्वानोंमें बहुत मतभेद देखा जाता है। यहाँ विस्तारभयसे उन सबके मतका उल्लेख न करके सिद्धान्तमत ही प्रस्तुत किया जाया है। श्रीनिखिल बाबूने शारदामठकी गुरु-परम्पराके अनुसार ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दीको शङ्करका आविर्भाव-काल माना है। पाश्चात्त्योंने ईसाकी आठवीं या नवीं शताब्दीमें शङ्करका प्राकटच बताया गया है। शृङ्गेरी-मठकी गुरु-परम्पराके अनुसार १४ विक्रमार्काब्द शङ्करका जन्मकाल है। उक्त विक्रमार्क या विक्रमादित्य ६७० ई० में राज्य करते थे। इसमें पूर्वका १४ अब्द और जोड़ देनेसे ६८४ ई० होता है। यही मत विद्वानोंको मान्य है।

शङ्कराचार्य द्वारा रचित सैकड़ों छोटे-बड़े ग्रन्थ आजकल उपलब्ध हैं; पर उन सबकी भाषाशैली देखनेपर वे सब एककर्तृक नहीं जान पड़ते। शङ्कराचार्यकी गद्दियोंपर बैठनेवाले महंत लोग भी 'शङ्कराचार्य' ही कहे जाते हैं। उन्होंने भी बहुत-से ग्रन्थ लिखकर इसी नामसे प्रचारित किये हैं। फिर भी इतना तो निश्चित कहा जा सकता है कि ब्रह्म-सूत्रका शारीरक भाष्य, गीताभाष्य, उपनिषद्-भाष्य तथा सौन्दर्यलहरी आदि कुछ स्तोत्र ग्रन्थ आद्य शंकराचार्यके ही रचे हुए हैं।

आचार्य शङ्कर अद्वैत ब्रह्मनिष्ठ होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति उत्कृष्ट भक्तिभाव रखनेवाले प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपनी षट्पदीमें भगवान् विष्णुसे अविनय-अपनयनकी प्रार्थना

की है: **अविनयमपनय विष्णो** उन्होंने गङ्गाजीको श्रीपतिचरणारविन्दोंके मकरन्द बताया है और व्यापक सच्चिदानन्दमय ब्रह्मको उनके परिमल (सुगन्ध) का विस्तार कहा है। साथ ही भवभयके खेदका उच्छेद करनेवाले उन श्रीपतिचरणोंकी सभक्ति वन्दना की है—

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभागसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥

इतना ही नहीं, उन्होंने गुण-मन्दिर दामोदरसे, सुन्दरवदनारविन्द गोविन्दसे परमभयके निवारणके लिए अभ्यर्थना की है। उनकी दृष्टिमें करुणामय नारायण ही श्रीकृष्ण हैं। वे भगवद्-गीता भाष्यके उपक्रममें कहते हैं :

'''अधर्मेणाभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने चाधर्मे जगतः स्थितिं परिपिपालयिषुः स आदिकर्ता नारायणाख्यो विष्णुर्भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवादंशेन कृष्णः किल संबभूव।'

अर्थात् जब अधर्मसे धर्म दबता जाने लगा और अधर्मकी वृद्धि होने लगी तब जगत्की स्थितिको सुरक्षित रखनेकी इच्छासे वे आदिकर्ता नारायण नामक श्री विष्णु भगवान् भूमण्डलके ब्रह्म—ब्राह्मणोंके ब्राह्मणत्वकी रक्षा करनेके लिए श्री वसुदेवजीसे श्री देवकीजीके गर्भमें अपने संपूर्ण अंशोंसे श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए, यह प्रसिद्ध है।

भगवान् श्रीकृष्णके महत्त्वको स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं : "ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजसे सदा सम्पन्न वे भगवान् यद्यपि अजन्मा; अविनाशी, संपूर्ण भूतोंके ईश्वर और नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव हैं ; तथापि अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी मायाको वशमें करके अपनी लीलासे शरीरधारीकी तरह उत्पन्न हुए-से और लोगोंपर अनुग्रह करते हुए-से दीखते हैं।

अद्वैतवादी शङ्करके चित्तमें द्वैतसुलभ प्रपत्ति या भक्तिका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं 'जैसे एक ही पहाड़के पत्थरको खोदकर देव, देवमन्दिर और उसके परिकर बन सकते हैं तो एक ब्रह्मकी शिलापर भक्तिका व्यवहार क्यों सम्भव नहीं ?' यही कारण है कि आचार्य श्रीकृष्णको 'माँ' कहकर उनकी कृपाकी कोर माँगते हैं :

मायाहस्तेऽर्पयित्वा भरणकृतिकृते मोहमूलोद्भवं मां
मातः कृष्णाभिधाने चिरसमयमुदासीनभावं गताऽसि।

आचार्यकी दृष्टिमें भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट गीताशास्त्र समस्तवेदार्थ-सारसंग्रह है। उनकी जयन्तीके अवसरमें हमें उनके चरणोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान एवं भक्तिको जीवनमें उतारने और मानव-जन्मको सफल बनाने का व्रत लेना चाहिए।

●

करुणाके अवतार भगवान् बुद्ध

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट

★

भगवान् बुद्धने वैदिक विचारधारासे ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, सदाचार, संयम, त्याग, वैराग्य, कर्म-विपाक आदिकी अनमोल शिक्षा ग्रहणकर उसे शील, समाधि और प्रज्ञाकी धारामें प्रवाहित किया। मन, वचन, कर्मसे अहिंसाका पालन और सदाचारमय जीवन द्वारा निर्वाणके पथकी ओर अग्रसर होनेपर उन्होंने जोर दिया।

लेकिन करुणाके अवतार बुद्धको यज्ञोंका कर्मकाण्ड, पशुवध आदिके बाहरी आडम्बर ठीक नहीं लगे। अतएव दुःखपीड़ित मानव-समाजको दुःखके दुष्ट-चक्रसे मुक्त करनेके लिए उन्होंने मध्यम मार्गका आश्रय लिया। चार आर्यसत्योंका, आर्य अष्टांगिक मार्गका उन्होंने प्रतिपादन किया। ये चार आर्यसत्य हैं :

१. दुःख : संसार दुःखमय है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, प्रियका वियोग, अप्रियका मिलन दुःखप्रद है।

२. दुःखसमुदय : तृष्णा ही दुःखका मूल कारण है। ऐहिक उपभोगोंकी तृष्णा, स्वर्गलोकमें जन्म पानेकी तृष्णा और यथेच्छ सुखभोग, इस जगत्से मिट जानेकी तृष्णा सारे पापों और अनर्थोंकी जड़ है।

३. दुःखनिरोध : तृष्णाका निरोध करनेसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है। निर्वाण न तो देह-दहनसे मिलनेवाला है और न भरपूर कामोपभोगसे।

४. दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा : तृष्णाके निरोधका साधन है अष्टांगिक मार्ग। अष्टांगिक मार्गमें ८ बातें हैं :

सम्यक् दृष्टि – चारों आर्यसत्योंमें विश्वास,
सम्यक् संकल्प – अकार्य न करनेका संकल्प,
सम्यक् वाचा – असत्य भाषण आदिसे दूर रहना,
सम्यक् कर्मान्त (कर्म) – प्राणि-हिंसा और दुराचार आदिसे बचना,
सम्यक् आजीव – आजीविकाके शुद्ध साधन अपनाना,
सम्यक् व्यायाम – मानसिक दोषोंको वशमें करना,
सम्यक् स्मृति – जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधिका सदैव स्मरण और
सम्यक् समाधि – विवेक, विचार, शांति, एकाग्रताका आश्रय ग्रहण करना।

१. सम्यक् दृष्टि : सम्यक् दृष्टिका अर्थ है, यथार्थ ज्ञान। चारों आर्यसत्योंको ठीक ढंगसे जान लेना, उनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेना ही सम्यक् दृष्टि है। जगत् अनित्य है, सतत परिवर्तनशील है, दुःखमय है। जन्ममें भी दुःख है, जरामें भी दुःख है, मरणमें भी दुःख है। शोक, परिवेदना, दौर्मनस्य, उदासीनता, उपायास, आयास, हैरानी आदि सब दुःख हैं। अप्रियसे मिलन और प्रियसे वियोग दुःख है। ईप्सित वस्तुका प्राप्त न होना भी दुःख है अर्थात्

रागके द्वारा उत्पन्न पाँचों स्कन्ध—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान सभी दुःख हैं। दुःखोंका कारण है तृष्णा और दुःखका निरोध या निराकरण है उस तृष्णासे सम्पूर्ण वैराग्य।

२. सम्यक् संकल्प : सम्यक् संकल्पका अर्थ है, उचित निर्णय या उचित निश्चय। सम्यक् संकल्पके तीन भेद माने गये हैं : १. नैष्कर्म्यसंकल्प—एकान्तवासकी रुचि, २. अव्यापाद-संकल्प—जगत्के सभी जीवोंपर शुद्ध प्रेम और ३. अविहिंसा-संकल्प—दूसरोंको कोई क्लेश न हो और अपनेको भी कोई क्लेश न हो, ऐसा संकल्प। मोटे तौरसे कह सकते हैं कि सम्यक् संकल्प है, कुशल कर्मों और सद्वृत्तियोंके आचरणका पुनीत संकल्प।

३. सम्यक् वाचा : सम्यक् वाचाका अर्थ है, वाणी द्वारा कोई पाप न करना, असत्य न बोलना, चुगली न करना, मुखसे कठोर शब्द न निकालना और व्यर्थकी बकवास न करना।

४. सम्यक् कर्मान्त : सम्यक् कर्मान्तका अर्थ है, शारीरिक आचार, शरीरसे होनेवाला आचार। हिंसा न करना, चोरी न करना, मिथ्याचार न करना, अकुशल कर्मोंका त्याग करना और पंचशीलका आचरण करना। पंचशील हैं : १. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य और ५. मद्य-निषेध। भिक्षुओंके लिए इनके अतिरिक्त पाँच शील और हैं : १. अपराह्ण भोजन करना, २. माला धारण न करना, ३. संगीत न सुनना, ४. स्वर्णका त्याग और ५. अमूल्य शय्याका त्याग।

५. सम्यक् आजीव : सम्यक् आजीवका अर्थ है, शुद्ध जीविका। भगवान् बुद्धने शस्त्रोंका व्यापार, प्राणियोंका व्यापार, मदिरा आदिका व्यापार, मांसका व्यापार और विषका व्यापार निषिद्ध बतलाया है। बनजारीका, कसाईका, कलालका, जहर बेचनेका, गुलामोंका धन्धा अनुचित माना है। इसी प्रकार बाँट और तराजू, नापकी ठगी, रिश्वतखोरी, धोखेबाजी, कुटिलता, हत्या, लूटमार आदि अकुशल कर्मोंको न करनेका आदेश दिया है। भिक्षुओंके लिए सैनिक आदिका कार्य भी निषिद्ध है। तात्पर्य यह है कि जीविकाके लिए ऐसा कोई भी आचरण न किया जाय, जिससे किसीको दुःख हो और जिसके लिए कोई अकुशल कर्म करना पड़े।

६. सम्यक् व्यायाम : सम्यक् व्यायामका अर्थ है, उचित उद्योग करना। अशोभन उद्योगको रोकना और शोभन उद्योगको करना। १. मनमें जो कुविचार न आये हों, उन्हें न आने देना, २. जो कुविचार मनमें आये हों, उनको नष्ट करनेका प्रयत्न करना, ३. जो सुविचार मनमें न आये हों, उनको लानेका प्रयत्न करना और ४. जो सुविचार मनमें आये हों, उनका विकास करना और उन्हें पूर्णता तक पहुँचाना।

७. सम्यक् स्मृति : सम्यक् स्मृतिका अर्थ है, काया अपवित्र पदार्थोंसे बनी है, यह विवेक सतत जाग्रत रखना। शरीरके सुख-दुःख आदिका बार-बार चिन्तन करना। अपने चित्तका सतत अवलोकन करना और कार्य-कारणके तात्त्विक विचारोंका चिन्तन करते रहना। कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना—इन चार प्रकारकी भावनाओंको सतत जाग्रत रखना ही सम्यक् स्मृति है।

८. सम्यक् समाधि : सम्यक् समाधिका अर्थ है, शीलके आचरणसे शरीरकी शुद्धि प्राप्त होती है और उससे प्राप्त होती है समाधि। इसके लिए ध्यान बताये गये हैं। पहले ध्यान

में योगी सभी काम-वासनाओंका निरोध करके वितर्क और विचारसे युक्त तथा विवेकसे उत्पन्न प्रीति और सुखसे सम्पन्न होता है। दूसरे ध्यानमें वितर्क और विचार शान्त हो जानेसे चित्तमें प्रसन्नता और एकाग्रता आती है, साथ ही विचाररहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति और सुख भी होते हैं। तीसरे ध्यानमें योगी प्रीतिका परिहार कर केवल उपेक्षा, स्मृति और सुखका अनुभव करता है। चौथे ध्यानमें योगी सुखका भी परिहार कर केवल उपेक्षा और स्मृतिका अनुभव करता है।

सफल समाधिसे चित्तकी शुद्धि होती है और काया तथा चित्त दोनोंके शुद्ध हो जानेपर प्रज्ञाकी उत्पत्ति होती है।

बौद्धधर्मकी आधारशिला है : **मध्यम मार्ग** इसका अर्थ है, जीवनके किसी भी व्यवहारमें अतिसे बचना। न त्याग-तपस्यामें ही अति करना और न भोग-विलासमें ही। वीणाके तारोंको इतना न कसो कि तार ही टूट जायँ और न इतना ढीला रखो कि स्वर ही न निकलें। **अति सर्वत्र वर्जयेत्।** इसका साधन है अष्टाङ्गिक मार्ग। 'आर्यसत्य और अष्टांगिक मार्गपर चलकर निर्वाणकी उपलब्धि होती है'—ऐसा भगवान् बुद्धने कहा है। उन्होंने योगयुक्त जीवनपर, कर्मपर और साधनापर ही सबसे अधिक जोर दिया। जीव, जगत्, ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म आदिके विषयमें वे मौन रह गये। उनका **निर्वाण** वैदिकोंके 'ब्रह्म-निर्वाण' का ही एक रूप है।

भगवान् बुद्धका **मध्यम मार्ग** और भगवान् महावीरकी **मध्यम दृष्टि** भारतीय धार्मिक विचारधाराकी अनमोल कड़ियाँ हैं। बौद्धधर्म तो केवल भारतमें ही नहीं फैला, उसने बर्मा, सुदूरपूर्व चीन, जापान, सिंहल तथा विश्वके अन्य अंचलोंमें भी अपना विकास किया, परन्तु जैन-धर्म विधि-निषेधोंसे जकड़ा होनेके कारण भारतके बाहर न जा सका। पर दोनों धर्मोंकी सुरभि तो दो-ढाई हजार वर्ष बाद भी उसी प्रकार दिग्दिगन्तको व्याप्त कर रही है।

बुद्ध भगवान्की विचारधाराने ज्ञानदेव, नामदेव, कबीर, नानक आदि मध्यकालीन साधु-संतोंपर भी अपनी कम छाप नहीं डाली। यह बात दूसरी है कि इन संतोंकी अपनी-अपनी परम्परा है, परन्तु तीन-चार बातोंमें उनपर बौद्ध-विचारोंका कुछ-न-कुछ प्रभाव है ही। जैसे : १. धार्मिक रूढ़ियों, आडम्बरों आदिका विरोध, २. जीवन और जगत्की नश्वरता, ३. सदाचारमय संयमपूर्ण जीवनपर जोर और ४. तृष्णाके उन्मूलनपर जोर।

करुणावतार भगवान् बुद्धकी जयन्तीपर हम संक्षेपमें उनके उपदेशोंका यह सार आचरणमें उतारें तो हमारा कल्याण हो :

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥ (१४.१)

अर्थात् १. सभी पापोंका न करना, कायिक, वाचिक, मानसिक पापोंसे विरत रहना २. सभी कुशल कर्मोंका करना, और ३. चित्तका शोधन करते रहना—यही है बुद्धोंका शाशन। पापोंसे निवृत्ति, सत्कर्मोंका सेवन और चित्तकी शुद्धि—यही है बुद्धोंकी शिक्षा।

क्या युद्ध भी 'योग' बन सकता है ?

आचार्य श्री सुवालाल उपाध्याय 'शुकरत्न'

★

यह सच है कि केवल युद्धसे हम अपनी मानवीय समस्याओंके अन्तिम समाधान तक कभी नहीं पहुँच सकते। यह भी झूठ नहीं कि रक्तपात, कटुता और द्वेषसे परिपूर्ण युद्ध एक भयंकर कर्म है। **मेकियावली** के अनुसार 'युद्ध एक ऐसा पेशा है, जिसमें मनुष्य सम्मानपूर्वक नहीं रह सकता। यह ऐसी नौकरी है, जिसमें लाभ कमानेके लिए सैनिकको छली, लुटेरा और क्रूर बनना पड़ता है। यहाँ पहुँचकर मनुष्य न केवल अपने सम्पूर्ण व्यक्तिको कर्मकी ज्वालामें झोंक देता है, प्रत्युत कभी-कभी राष्ट्रका सारा पौरुष ही खूनसे भरी खाइयोंमें भरनेके लिए धकेल दिया जाता है, समस्त राष्ट्रकी कर्मशक्ति प्रवल वेगसे उड़ेल दी जाती है।'

किन्तु जवतक लोभ, स्वार्थ, ईर्ष्या, तृष्णा और अभिमानपूर्ण महत्त्वाकांक्षा मानव-प्रकृतिकी प्रेरक हैं, तबतक राजनैतिक व्यवस्थाओंमें युद्ध रोक पाना अत्यन्त कठिन है। मानव-इतिहास युद्धकी कहानियोंसे भरा पड़ा है। द्वेषसे जलते मन और अपनी असम्यक् तथा असन्तुलित बुद्धि द्वारा किये गये निर्णयोंके कारण मनुष्यके अन्तर्जीवनमें रहनेवाला यही युद्ध शस्त्रास्त्रोंके प्रहारों द्वारा हमारे बाह्य-जीवनमें उतर पड़ता है। संसारकी न्याय-व्यवस्था तथा शान्तिको खतरा पैदा करनेवाली, आसुरी प्रवृत्तियों और शक्तियोंको दबानेके लिए प्रति-युद्ध भी अनिवार्य हो जाता है। अन्यायका प्रतीकार मानव-सामर्थ्यका सर्वश्रेष्ठ आविष्कार है, इसलिए युद्ध और संघर्ष भी मनुष्य-जीवनके महत्त्वपूर्ण पक्ष बन गये हैं। **नीत्से** ने आग्रहपूर्वक कहा है : 'युद्ध जीवनका एक पहलू है और आदर्श मनुष्य वही है, जो योद्धा है। आरम्भमें वह ऊँट-प्रकृतिवाला हो सकता है और उसके बाद शिशु-प्रकृतिवाला, पर यदि उसे पूर्णत्व प्राप्त करना है, तो मध्यमें सिंह-प्रकृतिवाला मनुष्य होना ही पड़ेगा।'

महाभारत-कालमें ऐसी कठोर मान्यता थी कि ब्राह्मणको यात्रा और राजा अथवा क्षत्रियको युद्धके लिए तैयार रहना ही होगा। यदि वे अपने इन कर्तव्योंका पालन नहीं करते, तो उन्हें गलेमें पत्थर बाँधकर जलाशय में डुबो देना ही उचित है :

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
राजानं चाप्ययोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥

वैराग्यका आदर्श मानव-जीवनकी समस्याका अन्तिम हल नहीं। शौर्य और वीरता युद्धने ही विकसित की है। सत्य, न्याय और राष्ट्रकी सार्वभौम प्रभुसत्ताकी रक्षाके लिए अपना बलिदान करनेवालोंके आगे समस्त राष्ट्र श्रद्धासे सिर झुकाता है। आकाशके नक्षत्रतक उनकी यशोगाथा गाते हैं। युद्ध और संघर्ष मनुष्यकी इस स्वाभाविक प्रवृत्तिको नष्ट करनेके स्थानपर उससे न्याय और मानवताके सच्चे शत्रुओंकी पहचान करा देना ही अधिक कल्याणकारी है।

ऋग्वेदमें युद्धकलाका अद्भुत वर्णन है। आर्योंके रथ सौ-सौ चक्कों और ६-६ घोड़ोंवाले भी होते थे (ऋ० १.६७४)। एक ऐसे रथका विवरण भी मिलता है, जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तीनोंमें चलनेमें समर्थ था। (७.६७.७)। एक स्थानपर वीरोंके लिए कहा गया है : 'उठो वीरो ! गर्वीले शत्रुका दर्प चूर्ण कर दो। उसकी रक्षा-पंक्तिकी मसलते-कुचलते आगे बढ़ जाओ। तुम्हारे प्रचण्ड वेगको शत्रु सर्वथा रोक नहीं सकता। तुम अकेले ही उसे जीत लोगे।' (ऋ० १०.८४.३) आर्योंका सुदृढ़ सिद्धान्त था : **न दैन्यं न पलायनम्**। इन्द्रने दुश्मनोंकी १५० सेनाओंका विनाश किया था। (ऋ० २.४.४)।

इसी प्रसंगमें गीतामें श्रीकृष्णका यह कथन भी ध्यान देने योग्य है :

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।

अर्थात् क्षत्रियके लिए न्याय, सत्य और धर्मयुद्धसे बढ़कर अन्य कुछ भी श्रेयस्कर नहीं है। महाकवि कालिदास लिखते हैं कि जो दूसरेकी देहपर, स्वत्वपर चोट न लगने दे वही क्षत्रिय है;

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।

महाकविका यह कथन बंगला-देशकी मुक्तिके सन्दर्भमें कितना सार्थक बन गया ! देशकी शान्ति और सुरक्षाके निमित्त युद्धकी अनिवार्यता दिखानेके लिए ही कालिदासने रघुके दिग्विजयकी योजना की है। स्वर्गके खुले दरवाजेकी भाँति अकस्मात् प्राप्त युद्ध भाग्यशाली सैनिक को ही मिलता है। ऐसे अवसर बार-बार नहीं आया करते। सन्धि विफल हो जानेपर कुन्तीने श्रीकृष्ण द्वारा भीम और अर्जुनके पास यही सन्देश भिजवाया था कि क्षत्राणी जिस उद्देश्यसे पुत्रको जन्म देती है, उस उद्देश्यको पूर्ण करनेका अवसर आ गया है :

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।

मनुष्य-जीवनमें उपस्थित होनेवाले इस युद्धरूपी कर्मको हम किसी निश्चित पाप-पुण्यकी परिधिमें नहीं बाँध सकते। जब यह धर्म अर्थात् सत्प्रवृत्तियों तथा न्याय-संगत पक्षोंकी स्थापनाके लिए किया जायगा, तो पुण्य होगा और यदि वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओंको दूसरेपर लादने तथा असत्प्रवृत्तियों (अधर्म) के पोषणके लिए किया जायगा, तो अधर्म होगा।

न्याय-सङ्गत युद्धमें सैनिकोंका मरना तो एक साधारण घटना है। व्यक्तिगत भावुकताके कारण उससे डरनेवाली बुद्धि संसारकी वस्तुस्थितिके मर्मतक नहीं पहुँचती। अन्यायका पक्ष लेनेवाले अधिकसे अधिक दुश्मनोंको मृत्युके घाटतक पहुँचाना ही सैनिकका परम धर्म है। हिंसा स्वयंमें कोई धर्म-अधर्म नहीं है। उद्देश्यके आधारपर ही वह कभी धर्म हो जाती है, तो कभी अधर्म। इसलिए हिन्दू-धर्म कहता है कि अहिंसाके पालनसे योगको प्राप्त संन्यासीको जो गति मिलती है, वही गति युद्धमें मारे जानेवाले, लड़ते सैनिकको प्राप्त होती है :

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः॥

देश-रक्षाकी उत्कट भावनासे प्रेरित युद्धमें अपूर्व उत्साहके कारण सैनिकका 'देहको ही आत्मा मानने'का भाव शिथिल हो जाता है, जिससे 'मेरी यह देह सदा बनी रहे' यह अभिनिवेश भी अपने-आप छूट जाता है। इसी उत्साहके कारण बुद्धिकी शक्तिके बहुत बढ़ जानेसे अन्तः-करणका अज्ञानरूपी आवरण भंग हो जानेपर सैनिकको योगीकी गति प्राप्त होती है। किसी विषयमें चित्तकी सर्वथा एकाग्रता हो जानेपर अन्य विषयोंका भान नहीं रहता, यही मोक्ष-शास्त्रोंकी तुरीयावस्था है। यहाँ एक और विशेषता है। अन्यान्य साधन बहुकालव्यापी साधनाके बाद साध्यतक ले पहुंचते हैं, किन्तु युद्ध तत्काल ही कल्याणसाधक बन जाता है।

युद्धकी नैतिकता भी भिन्न होती है। दुश्मनों द्वारा आक्रमण कर देनेपर हिंसा और रक्तपातसे मुँह मोड़ना निन्दनीय भीरुता है। सैनिक यदि सीमापर शत्रुओंपर गोली चलाना अस्वीकार कर दे, तो उसे प्राणदण्ड मिलेगा। पार्थ अर्जुन भी एकबार कुरुक्षेत्रके मैदानमें झूठी शान्ति और विशाल जनसमूहके हत्याकाण्डकी कल्पनासे भीरु बन गया था। **कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि**का संकल्प लेकर और अपने सारे जीवनको ही दाँवपर लगाकर चलनेवाले अर्जुनका मन सन्देह और मोहके अन्धेरेसे घिरकर टुकड़े-टुकड़े होने लगा। उसे लगा, जैसे वह नीति-धर्मकी हत्या कर रहा है। युद्ध न करनेके पक्षमें उसने प्रबल युक्तियोंकी झड़ी लगा दी। तब श्रीकृष्णने उसकी ढुल-मुल और उथल-पुथलवाली मनःस्थितिको 'नपुंसकता' कहकर एक ही प्रहारमें ठीक निश्चय करनेके लिए विवश कर दिया। फिर बड़ी गम्भीर और दार्शनिक विवेचनाओं तथा युक्तियोंसे उन्होंने मनुष्य-जीवनमें आवश्यक होनेपर युद्धरूपी कर्तव्यकी अनिवार्यतापर ऐसा तर्क-प्रवण और मर्मपूर्ण भाषण दिया, जो विश्व-साहित्यमें आज भी अद्वितीय है।

वहीं श्रीकृष्णने अर्जुनको 'युद्ध-योग'का उपदेश दिया है :

सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ (गीता ३.२८)

'जय-पराजय युद्धके बाह्य फल हैं, राज्य अथवा शत्रु-अधिकृत भूमिका लाभ-अलाभ युद्धके अवान्तर फल हैं। उसका अन्तिम परिणाम है, सुख-दुःख। उन्हें समान कर लेनेपर अर्थात् चित्तका समत्व स्थापित कर लेनेपर प्राप्त कर्तव्य करनेमें कोई पाप नहीं लगता।' यही युद्ध-योग है।

जो मानव समता धारण करके द्वन्द्वोंसे नहीं हिलता और स्वस्थतासे स्वधर्मका पालन करता है, वही योगमार्गका अनुकर्ता है।

लगभग पाँच हजार वर्ष बाद श्रीमती इन्दिरा गान्धीने इसी कथनको दुहराकर समचित्तता न बिगड़ने देनेके लिए कहा था : 'यह स्वाभाविक है कि भारतके लोग बेहद खुश हैं। मैं उस खुशी और आनन्दमें शरीक हूँ। मगर जैसा कि गीताने कहा है, हर्ष और शोकसे हमारी समचित्तता नहीं बिगड़नी चाहिए, हमारा भविष्य-दर्शन धुंधला नहीं पड़ना चाहिए।' (१७ दिसम्बर १९७१ को लोकसभामें दिया वक्तव्य)।

बुद्धिको निर्मल, स्थिर, निर्लेप और सम रखकर, कर्तव्य-अर्तव्यका मूल पहचानकर युद्ध-जैसा घोर कर्म करनेपर भी मनुष्य पतन या भटकावकी ओर नहीं जाता, प्रत्युत इतिहासको मोड़ देनेवाले अथवा स्वार्थोंकी दुनियामें नयी मान्यता स्थापित करनेवाले अद्भुत शौर्य और पौरुषका प्रभाव फैलता है, जिससे जीवनकी अतितुच्छ दृष्टियाँ ऊँचाईकी ओर बढ़नेको प्रेरित होती हैं। इसके बिना दुष्टोंका विनाश और सज्जनों (साधुओं) का परित्राण सम्भव ही नहीं। अत्याचारी दुष्ट प्राणियोंपर अहिंसा, क्षमा और दया दिखलानेका परिणाम समाजके लिए हानिकारक ही होगा। अतिदुष्ट घातक पुरुषोंके मारनेसे समाजके बहुतसे मनुष्योंको आपत्ति दूर हो जाती है। इसीलिए राम, कृष्ण आदि अवतारी पुरुषोंके जीवन-कार्योंमें दुष्टोंका विनाश भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य था।

गुरु गोविन्दसिंहने कहा था कि 'जब नीतिके सारे स्रोत विफल हो जायँ, तो उस वक्त तलवारको साधन बनाना ही सबसे बड़ी नीति है।'

कभी-कभी शान्तिके लिए भी युद्ध लड़ना पड़ता है। सच पूछा जाय तो शान्ति शक्तिके मूलमें ही सोती और जागती है। संसार जानता है कि महाभारत-युद्धके बाद हजारों वर्षोंतक राष्ट्रमें सुख-शान्ति बनी रही।

न्याय, सत्य और धर्मका पक्ष होनेपर, सैनिकोंके मनषे एक ऐसा अजेय आत्मबल होता है, जिसे बड़े-बड़े शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित दुर्धर्ष शत्रु भी पराजित नहीं कर सकते और न दुनियाकी कोई शक्ति उसे दबा सकती है। युद्धकर्ताओंका शत्रुका अस्तित्व मिटाने या उसके देशपर अधिकार करनेका कोई अन्तिम लक्ष्य नहीं होता, वे तो सत्यकी रक्षा और अन्यायके प्रतीकारके लिए लड़ते हैं। यही कारण है कि 'युद्ध-योग' के शास्त्रके अन्तमें अध्यात्म और नीतिके अग्रणी सञ्जयने स्पष्ट शब्दोंमें कहा :

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ (गीता)

जब ईश्वरवाद दाँवपर लगाया गया !

श्री गो० न० वैजापुरकर

★

स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छ - स्वच्छाया - ऽऽयासितेन्दवः ।
त्रायन्तां वो मधुरिपोः प्रपन्नार्तिच्छिदो नखाः ॥—आचार्य आनन्दवर्धन

साधारणसे साधारण आयोजनका, सङ्गठनका भी एक न एक संयोजक और नियन्त्रक हुआ करता है, तो इस दृश्यमान विशाल ब्रह्माण्डका कोई न कोई संयोजक और नियन्त्रक मानना ही पड़ेगा। स्पष्ट है कि ब्रह्माण्डके सञ्चालन और नियन्त्रणकी यह शक्ति कोई सर्वसाधारण मानव, दानव या देव नहीं हो सकती। जो यह सामर्थ्य रखता है, वही ईश्वर है। निश्चय ही वह एक और सर्वथा पूर्ण रहेगा। अनेक माननेपर उसमें आंशिकता आयेगी जो पूर्णताकी स्पष्ट विरोधिनी है। कोई भी अपूर्ण आंशिक अपने समान अन्य अपूर्ण आंशिकका नियन्त्रक नहीं वन सकता। प्राणी सदैव अपनेसे अधिकको ही अपना नियन्त्रक माना करता है, अपनेसे समानको नहीं।

किन्तु जव किसी साधारणके पास अधिकसे अधिक भौतिक सम्पन्नता आने लगती है तो वह स्वयंको ही 'ईश्वर' समझने लगता है। अन्ततः जव वह लौकिक दृष्टिकी तथाकथित सम्पन्नताकी चोटीपर चढ़ जाता है तो पूर्ण-शाश्वत ईश्वरता तकको चुनौती देने लगता है। तव ईश्वर-तत्त्व ऐसा चमत्कार दिखाता है कि उस अनीश्वरवादी या आत्मेश्वरवादीकी सारी सम्पन्नता जहाँकी तहाँ धरी रह जाती है और वह चारों खाने चित्त हो जाता है। कारण ईश्वर जहाँ 'महतो महीयान्' है वहीं 'अणोः अणीयान्' भी। उसकी अणु-शक्ति प्रतिस्पर्धीकी महाशक्तिकी धारको भोथर बना डालती है। खटमलका खून लगते ही हीरा चूर-चूर हो जाता है जो वज्रसे भी टूट नहीं पाता; इसलिए स्वयं 'वज्र' कहलाता है।

अनीश्वरवादी पिता हिरण्यकशिपु और ईश्वरवादी पुत्र प्रह्लादकी कथा इसका जीता-जागता उदाहरण है ! पिताने त्रिलोकीको जीतकर उसपर अपना एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया था। सच पूछें तो उसका वह राज्य कठोर तपस्यासे सम्पादित ईश्वरानुग्रहका ही परिणाम था। बिना ईश्वरके संकेतके कभी कोई सम्पन्न हो ही नहीं सकता। किन्तु त्याग-तपसे प्राप्त उस साम्राज्यके मदमें वह इतना मदहोश हो गया कि सिवा अपनेके संसारमें किसीको प्रभु नहीं मानता था।

यों उसने तप भी कोई साधारण नहीं किया। हाथ ऊपर उठाये, दृष्टि आसमानमें गाड़ दी और जमीनको अंगूठेका सहारा दे खड़े-खड़े युगोंतक कठोर साधना थी। उसपर वालू-मिट्टीका ढेर लग गया, घास-पात उग आया। चींटी, विच्छू, साँप जैसे कीड़ोंने शरीरकी सातों धातुएँ चट कर डालीं। कङ्काल मात्र शेष रह गया, जिसमें प्राण मन्द-मन्द साँसें ले रहा था। उसकी उस साधनासे

त्रैलोक्य काँप उठा। ब्रह्मदेव दौड़े-दौड़े उसके निकट आये। बोले : 'कश्यप ! तपस्या पूरी हो चुकी, अब विरत हो जाओ और 'वरं ब्रूहि !' 'वर माँगो।'

हिरण्यकशिपुने इस घोर तपस्याका वर भी मुँह माँगा पाया। विधाताकी कृपासे ऐसा बन गया कि असीम सृष्टिके किसी प्राणीसे, अस्त्र-शस्त्रसे, दिन-रात और बाहर-भीतर कहीं उसे मृत्युका—मानवका मद चूर करनेवाले एकमात्र यमदण्डका—भय जाता रहा।

फिर क्या था ? मृत्युकी तलवार सदा सिरपर लटकते रहनेपर भी जब मामूली सत्ता-पाकर आपेसे बाहर हो उठते हैं तो मृत्यु-भय-विहीन हिरण्यकशिपुका गर्वोद्धत होना आश्चर्यकी बात ही नहीं। उसके अन्तरमें अपने बड़े भाई हिरण्याक्षके हत्यारे भगवान् विष्णुके प्रति प्रतिशोधकी ज्वाला जो जल रही थी ! बस, उसने अनीश्वरवादिता और आत्मेश्वरवादिताका बीड़ा उठा लिया।

प्रह्लाद था तो उसका प्रिय तनु-ज (पुत्र), पर वह अपनी और विश्वकी प्रत्येक गतिकी नियन्त्रक एक ईश्वरशक्तिका कायल रहा। उसकी दृढ़ मान्यता थी कि मानवकी पलक भी उस अदृश्य ईश्वर-शक्तिके संकेत बगैर हिल नहीं सकती। व्यापकता और विश्वहित तो उसमें कूट-कूटकर भरा था। प्राणीकी परमगति, परम सुख मुक्तिसे भी वह तनिक मोह नहीं रखता था, यदि वह अपने साथके अनेक कृपणोंको नसीब न होती हो।

ऐसे लोकोत्तर आदर्शशाली इकलौते बेटेकी कुसुम-कोमल देहपर वज्रवत् यातनाओंके पहाड़ घहरानेमें भी अनीश्वरवादिताकी मदिरासे मत्त हिरण्यकशिपुने कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी। फिर भी ईश्वरविश्वासी प्रह्लाद निर्बलके बल रामके बलपर धीरता-वीरतासे सब कुछ सहता गया।

पिता-पुत्रमें यह बे-बनाव तबसे शुरू हुआ, जब एकबार असुरराजने बड़े प्यारसे पुत्रको गोदमें ले उसकी ठुड्डी छूते हुए पूछा : 'वत्स ! बता, तू किसे अच्छा समझता है ?' असुरपुत्र और ईश्वर-विश्वासी प्रह्लादने चट जवाब दिया : 'अज्ञान' (माया) से उद्विग्न जो प्राणी पतनके स्थान घररूप कुएँसे बचकर जंगलमें जा श्रीहरिका सहारा लेता है, पिताजी ! उससे बढ़कर मैं किसीको अच्छा नहीं मानता।'

असुरराजने सोचा—बच्चा किसी विपक्षीके बहकावेमें आ गया है। इसलिए उसने समझा-बुझाकर उससे सच्ची घटना पूछी, फिर भी लाड़लेने हर बार पिताको वही दृढ़ ईश्वर-निष्ठा दरसायी। अतएव पिताने डराया-धमकाया और राजनीतिकी कूट-शिक्षामें लगा दिया, ताकि हृदय-परिवर्तन हो जाय। वारांगनाकी तरह राजनीति अनेकरूपा और लुभावनी हुआ ही करती है। लेकिन उस ईश्वर-विश्वासी पुत्रपर राजनीति अभिसारिकाके छल-कपट, नाज-नखरे कुछ भी कारगर न हुए।

यही नहीं, दैत्यगुरु शुक्राचार्यके पुत्रकी उस गृह-पाठशालाको भक्तराज प्रह्लादने भागवत-धर्मका अच्छा-खासा शिक्षा-केन्द्र बना डाला। स्वयं वही असुर-बालकोंको पढ़ाने लगा :

कोऽति प्रयासोऽसुरबालका हरे-
रुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः।

स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां
सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥

'साथियो ! अर्थात् प्राणिमात्रके सच्चे सुहृद् भगवान्‌की उपासनामें श्रम ही क्या, जो आपके हृदयमें ही अवस्थित हैं ? तब साधारण विषयोंके पीछे क्यों पड़े हो ?' प्रह्लादके भागवत-धर्म प्रचारका जादू तेज़ीसे विष-सा असुर-बालकोंपर चढ़ता देख प्राचार्य भयविह्वल हो उठे और उन्होंने सम्राट्से जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

क्रोधसे उन्मत्त पिताने प्रह्लादको बुलाकर डाँटा : 'दुर्विनीत ! मेरे शासनका उल्लंघन करता है ! चाहूँ तो अभी तुझे जमराजके घर पठवा दूँ । ध्यान रख, मेरे क्रुद्ध होनेपर अपने-अपने ईश्वरों सहिततीनों लोक काँप उठते हैं । बता, किसके बल-बूतेपर इतनी उछल-कूद मचा रहा है ?'

प्रह्लादने कहा : 'तात ! वह न केवल मेरा या आपका बल है, चराचर विश्वका भी बल है । अच्छा हो, आप भी अपना यह भीषण असुरभाव त्याग उसी अशरणकी शरण जायें ।'

पिता आगबबूला हो गया । वह प्रलाप करने लगा : 'दुष्ट ! निश्चय ही तू मरनेपर उतारू हो गया है । कहाँ है तेरा वह ईश्वर ? अगर वह घट-घटव्यापी है तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखता ? ले, इसी असिसे तेरा सिर अलग किये देता हूँ ! निकल आये इस खम्भेसे तेरा ईश्वर और बचा ले अपने लाड़लेको !'

असुरराज सिंहासनसे उतरा और उसने मुट्ठी बाँध जोरसे खम्भेपर दे मारी । आत्मघातका उसका अपना आचरण चरम सीमापर पहुँच गया था । यही कारण है कि खम्भेके दो शकल हो प्रलयंकर शब्द करते हुए नर और सिंहके मिश्रित रूपमें श्रीहरि प्रकट हो गये ।

नृसिंहदेवके उस प्रचण्ड तेजसे देव, दानव, गन्धर्व, विद्याधर, मानव सभी भयविह्वल हो उठे । उनकी प्रचण्ड क्रोधाग्निमें हिरण्यकशिपु जैसे फतिंगेको जलते देर न लगी । सन्ध्या समय श्रीहरिने ड्योढीपर बैठकर असुरराजको गोदमें ले अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसका उदर चीरा और उसके आत्मेश्वरको अपनेमें मिला लिया । देवोंने पुष्पवृष्टि की, गन्धर्वोंने गीत गाये और नभोमण्डल दुन्दुभि-स्वरोंसे गूँज उठा । सभी देवोंसहित आदिमाता श्री लक्ष्मी भी प्रभुका क्रोध शान्त न कर सकीं । अन्ततः जब प्रह्लादने प्रभुको मनाया तब कहीं वे शान्त हुए । प्रभुने भक्तराजका मस्तक सूँघा और उसे असुरराजके राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया । असुरराज प्रह्लाद 'भक्तराज'के गौरवसे गौरवान्वित हो उठे । उनकी इस ईश्वर-निष्ठाने ही उनके कुलमें पौत्रके रूपमें महाराज बलि जैसे लोकोत्तर दानवीरको जन्म दिया ।

ईश्वरकी सत्तासे इनकार आजतक किया नहीं जा सका । जिसने ऐसा किया, वह नामशेष हो गया । उसके सारे गर्वको ईश्वर एक तिनकेसे चूर-चूर कर देता है । इसके विपरीत हम उसका संबल पा लें, तो कठिनसे कठिन प्रसंगमें भी वह हमारा साथ देगा; क्योंकि वह अशरण-शरण माना जाता है । आइये, हम भी उन्हें स्मरण करें । वैशाख शुक्ला चतुर्दशी उनका शुभ जन्म-दिन है ।

●

बाई सा'ब झाँसीवारी

स्वर्गीय डा० वृन्दावनलाल वर्मा

*

[१० मईसे प्रारम्भ सन् १८५७-५८ के स्वाधीनता-संग्रामका इतिहास हमारे राष्ट्रिय गौरवका इतिहास है। जिन लोगोंने उस महान् क्रान्तिकी योजना बनायी तथा जिन्होंने उसमें सक्रिय सहयोग दिया, वे सबकी सब दिव्य एवं वन्दनीय-विभूतियाँ हैं। इन दिव्य एवं वन्दनीय विभूतियोंमें भी जो चरित्र उभरकर सबसे ऊपर आ गया, वह है वीराङ्गना लक्ष्मीबाईका।

यदि यह कहा जाय कि रानी लक्ष्मीबाई रिपुदल-संहारिणी माँ जगदम्बाके मानकी प्रतीक थीं, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी; क्योंकि लोगोंका विश्वास है कि वे वास्तवमें महिषासुर-मर्दिनीका अवतार थीं।

महारानीने स्वराज्य-प्राप्तिके लिए योजना-बद्ध कार्य-क्रम बनाया और अनोखी सूझ-बूझके साथ उसका सञ्चालन किया था। स्वतन्त्रताकी इस पुजारिनके जीवन-सम्बन्धी खोजका श्रेय स्वर्गीय डा० वृन्दावनलाल वर्माको है, जिन्होंने इस देवीके जीवन-चरित्रपर पड़े पर्देको हटाकर स्वतन्त्रताकी नींव रखनेवाले अमर शहीदके रूपमें भारतीय जनताके समक्ष उसे उपस्थित किया। उन्हींकी अमर लेखनीसे स्वतन्त्र रूपमें लिखा यह लेख इतिहासके अनेक रहस्य खोल देता है।

रानीके इस अलौकिक शौर्यकी सुदृढ़ नींव थी भगवान् कृष्णकी 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि···'यह उक्ति जिसका उन्होंने अन्तिम सांस छोड़ते समय उच्चारण किया था।]

महारानी लक्ष्मीबाईके इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाले कई लोकगीत बुन्देलखण्डमें आज भी घर-घर गाये जाते हैं। इनका सृजन कब हुआ, कहा नहीं जा सकता। किन्तु हैं वे बहुत पुराने। इनमेंसे एक लोकगीतमें झाँसीके 'अलसानी' (आलीशान) किलेका वर्णन करनेके पश्चात् झाँसीपर अंग्रेजी फौजोंके हमलेका जिक्र किया गया है। गीतमें बताया गया है कि यदि रानीके एक 'दूल्हाजू' नामक सरदारने देश-द्रोह करके किलेका फाटक न खोल दिया होता तो रानी न तो हारतीं और न उन्हें झाँसी छोड़नी पड़ती। गीतामें कहा गया है :

दूल्हाजू ने करी बेईमानी, निमक हरामीसे वे हारी।
बाई सा'ब वे झाँसीवारी!

फाटक खुल जानेपर वीरांगना लक्ष्मीवाई मर्दाना वेष धारण करके घोड़ेपर सवार हो गयीं और पुत्रको पीठसे बांध, शस्त्रास्त्रसे लैस अंग्रेजोंसे लड़ती झांसीसे रवाना हो गयीं। महारानीका रण-कौशल देख अँग्रेजोंके छक्के छूट गये। साक्षात् यमकी सहोदराके रूपमें उन्होंने रानीको देखा, जो उनकी मौतका पैगाम लेकर उन्हींकी छावनीमें रण-ताण्डव मचाये हुए थीं। घोड़ेकी रासको दाँतोंसे पकड़, दोनों हाथोंमें लवार ले प्रलय मचाती जिस ओरसे वे निकल जातीं, काई-सी फट जाती थी। उस समय उनकी आयु केवल २२ वर्ष और सात मासकी थी।

उनकी इस बारी उम्र (कमसिनी) पर जो लोकगीत बुंदेलखण्डमें प्रचलित है, वह रानीके प्रति जन-जनके प्यारसे ओत-प्रोत है :

बारा बैस रानी घुड़ला पै निकरी हाथनमें ढाल-तलवार।
तुम मति निकरो रानी, बारी रे उमरिया, गोरनकी फौज अपार॥ बारी बैस...
महरियनकी पलटन, तिहारी रे रानी पैदर और असवार।
खाई खंदक, बनके जानवर कांटनकी भरमार॥ बारी बैस...
कट-कट सीस गिरैं धरती पै खूनकी बह गयी धार।
रात-दिना भयो जुद्ध रे भारी, रानी गयी सुरग सिधार॥ बारी बैस...

छोटी-सी आयुवाली रानी हाथोंमें ढाल-तलवार लेकर घोड़ेपर सवार हो, (किलेसे) निकली। (करुणार्द्र हो प्रजा चीख उठी) : 'हे वारी उमरकी रानी! तुम बाहर न जाओ, न जाओ, गोरोंकी अपार फौज सामने है और उसके मुकावलेमें तुम्हारी फौज नगण्य है और उसमें भी स्त्रियाँ ही अधिक हैं जो घोड़ेपर कम और पैदल बहुत है, पर रानी न मानी, वह निकल ही गयी!!

जनताने उसे रोकनेका प्रयत्न किया, कहा : रानी मार्गमें अनगिनत विघ्न-बाधाएं हैं, मार्ग कटीला-पथरीला है, पग-पगपर खूँख्वार जंगली जानवरोंसे खतरा है, कदम-कदमपर खाई-खंदक हैं। सुकुमार शरीरवाली वारी उमरकी रानी न जाओ, न जाओ। किन्तु रानी नहीं मानी, वह रणचंडिका का रूप धारण किये निकल ही पडीं और शत्रुदलमें घुस रुण्ड-मुण्डोंसे धराको पाट दिया, खूनकी नदियां वहने लगीं। घोर घमासान युद्ध करती, गोरोंकी फौजको दायें-बायें काटती मारती आगे बढ़ती ही चली गयीं और दुश्मनोंसे जूझती वीरगतिको प्राप्त हो गयीं।

बुन्देलखण्डके ग्रामीण इसे गाते-गाते रो पड़ते हैं और श्रोताओंको रुला देते हैं।

लक्ष्मीबाईका बाल्यकाल

महारानी लक्ष्मीबाईका जन्म काशीमें हुआ था। छुटपनमें उनको 'मनू' कहकर पुकारा जाता था। बुन्देलखण्डकी रीतिके अनुसार विवाहके उपरान्त उन्हें 'लक्ष्मीबाई' कहा जाने लगा।

विवाहके पहले छुटपनेमें ही उनकी माता भागीरथी बाईका देहान्त होनेके कारण वे अपने पिता मोरोपन्त तांबेके साथ बिठूर चली आयी थीं। वहाँ उस समय बाजीराव पेशवा रहा करते थे और उन्हें अंग्रेजोंकी ओरसे पेंशन मिला करती थी। झाँसीमें ही इनका संपर्क नाना साहब (घोंडू पन्त), नाना साहबके छोटे भाई राव साहब तथा तात्या साहब (तात्या टोपे) आदिसे हुआ। यहीं उन्होंने घुड़-सवारी, बन्दूक-तलवार चलाना सीखा। घोड़ेकी सवारी भी ऐसी कि इस हुनरमें वे अद्वितीय ही थीं; ऐसा उस समयके लोगोंका खयाल था। तलवार चलानेकी कलामें उनका जोड़ उस समय नहीं था। घोड़ेकी लगाम मुँहमें दबाकर एक-सी ही कुशलता, निपुणता तथा तेजीके साथ वे दोनों हाथोंसे तलवारें चलाती थीं।

झाँसीकी रानीकी हैसियतसे

उनका विवाह सन् १८४८ में झाँसीके विधुर राजा गंगाधररावके साथ हुआ और १८५३में (केवल पाँच वर्ष पश्चात् ही) वे विधवा हो गयीं। इस दौरानमें उनके एक पुत्र हुआ, किन्तु वह अल्पायुमें ही मर गया।

देहान्त होनेसे पूर्व राजा गंगाधररावने अपने परिवारके एक बालकको, जिसका नाम दामोदरराव था, गोद लिया था। किन्तु अंग्रेज सरकारने इस गोद लेनेको अपनी स्वीकृति प्रदान नहीं की और झाँसीके राज्यको अंग्रेजी राज्यमें सम्मिलित किये जानेकी घोषणा कर दी। लक्ष्मीबाईको पाँच हजार रुपये मासिककी पेंशन लगायी गयी। गंगाधररावपर कुछ कर्ज था, उसकी वसूलयाबीके लिए लक्ष्मीबाईकी पेंशन कुर्क करनेका हुक्म ईस्ट इण्डिया कम्पनीने जारी कर दिया और झाँसीमें गोवध भी जारी कर दिया गया। किसीकी जमीन छीनी, किसीकी सम्पत्ति तो बहुतोंका प्राणसे प्यारा धर्म। इस अत्याचारके विरुद्ध जो अपील की गयी उसपर हजारों संभ्रान्त नागरिकोंके हस्ताक्षर थे। महारानीने भी उस पर हस्ताक्षर किये थे, किन्तु कम्पनी-सरकारने एक झटकेसे उसे रद्द कर दिया।

सर्वस्व चला गया, इसपर जनता इतनी नहीं बौखलायी जितना धर्मपर आघात होते देख! [मेरे (लेखकके) प्रपितामह दीवान आनन्दराव (उनका असली नाम 'आनन्दराय' था, किन्तु राज्य-सरकारमें उन्हें आनन्दराव कहकर पुकारा जाता था) की भी सारी जमीन-जायदाद जब्त कर ली गयी। उनके दस्तखती कागजात अब भी मेरे पास हैं।]

जनरल सर हैनरीने, जो महारानी लक्ष्मीबाईका सम-सामयिक था, 'भारतके सिपाही युद्धका इतिहास' (History of the Indian Sepoy War) नामक पुस्तकमें लिखा है :

हिन्दुस्तानी लोग चोटका बदला लेनेकी प्रतीक्षा करनेमें माहिर होते हैं। ज्यों ही मौका पाते हैं, टूट पड़ते हैं। वे भरना देनेसे शुरुआत करते हैं।

इसी इतिहासकारने रानीके बारेमें लिखा है :

रानीको राज्यके छीने जानेकी चोट लगी, पेंशनकी आयसे अपने दिवंगत पतिका कर्जा चुकानेका जख्म हुआ, और झाँसीमें गोवधकी छूट हो जानेके कारण उनके रक्तकी प्रत्येक बूँद प्रज्वलित हो गयी।

गोवधके सम्बन्धमें यही इतिहासकार आगे लिखता है :

झाँसीमें कुछ समयके लिए मुसलमानी हुकूमत भी रही थी, किन्तु गोवध कभी नहीं हुआ था। यह जब प्रारम्भ हुआ तो रानीको और यहाँकी जनताको वह असह्य हो गया।

राजा और प्रजाका पारस्परिक सम्बन्ध कैसा था, इसपर प्रकाश डालते हुए सर हैनरीने लिखा है :

कम्पनीकी हुकूमतने राज्यकी बागडोर सँभाली, इससे पूर्व केवल राज-द्रोहके आधारपर ही किसानोंकी बेदखली हो सकती थी, अन्यथा नहीं। अक्सर ऐसा भी होता था कि किसान अगर लगान नहीं दे सकता था तो राज्यकी ओरसे माफ कर दिया जाता था। अंग्रेज सरकारने देखनेमें लगान तो कम कर दी, किन्तु वसूली अत्यन्त निर्ममताके साथ की जाने लगी। परिणामतः एक छोरसे दूसरे छोरतक जनतामें असन्तोष फैल गया और गोरोंकी हुकूमत उखाड़-फेंकनेके लिए वे कटिबद्ध हो गये।

१८५७ का विस्फोट

सन् १७५७ के प्लासीके युद्धमें विजयी अंग्रेजोंने उन्मादवश पूरे १०० वर्ष तक इस देशमें जो अकाण्ड-ताण्डव किये, उनका अवश्यभावी परिणाम ही सन् १८५७ का विस्फोट था। इन पूरे १०० वर्षोंमें अंग्रेजोंके अत्याचार और शोषणकी निरन्तर एक ही कहानी दुहराई जाती रही :

'यहाँके राजाओंके साथ शपथपूर्ण की हुई गम्भीर सन्धियोंको भंग करना; उनके राज्योंका, एकके बाद एकका, अनीतिपूर्ण तरीकेसे छल-छिद्रको काममें ला अपहरण करना; यहाँके प्राचीन उद्योग-धन्धों, कला-कौशल, व्यापार-व्यवसाय आदिको चौपट करके करोड़ों व्यक्तियोंको आजीविका विहीन कर कुत्तेकी मौत मरनेको मजबूर करना; राजाओंके महलोंमें जबरन घुस रानियोंके साथ बदसलूकी करना; महलोंको लूटना तथा तहस-नहस करना; हजारों जागीरों-जमीदारियोंको जब्त करना।"

इस प्रकार देशकी सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्थको चौपट करके इस देशको दासताकी शृंखलामें पूर्णरूपेण कसकर यहाँके जन-जीवनमें विष घोल रखा था कम्पनीके गोरे गुमास्तोंने। गोरखपुर तथा बनारस जिलोंके लाखों किसानोंको उनके वंशानुगत खेतों और मकनोंसे निकाल बे-घर-बारकर दिया गया। किसी भी गोरेके सामने कोई भी भारतीय घोड़ेपर सवार होकर निकल नहीं सकता था।

इस अकाण्ड-ताण्डवकी जो प्रतिक्रिया होनी चाहिए थी, उसीका यह परिणाम था विस्फोट। लगभग सौ वर्षतक यह रोष और असन्तोष सारे देशमें अन्दर ही अन्दर ज्वालामुखीकी तरह सुलगता रहा और और जब १८५७ में उसका विस्फोट हुआ, तो स्वाभाविक ही था कि वह महान् क्रान्तिका रूप धारण कर ले। वह अंग्रेजोंके जुलमसे आजाद होनेके लिए एक सुनियोजित युद्ध था, केवल-मात्र विद्रोह नहीं और इस आगमें घीकी आहुतिका काम किया था—इस देशकी हिन्दू-मुसलिम प्रजाकी धार्मिक भावनाको ठेस पहुंचाने तथा जबदस्ती ईसाई बनानेकी दुर्नीतिने! इन तथ्योंका समर्थन स्वयं अंग्रेज इतिहासकारोंने भी किया है जो उस समय भारतमें थे।

बुन्देलखण्डमें जो रोषकी चिनगारी भड़की, उसका मुख्य कारण था कम्पनीके अधिकारियों द्वारा झाँसीकी प्रजावत्सला साध्वी रानी लक्ष्मीबाईके प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार ! उस समय जनतामें जो रोष और क्षोभ व्याप्त था, उसका आँखों देखा और कानोंसे सुना हाल मुझे स्वयं दारोगा तुराब अलीसे, जो सन् १८५७ में झाँसीमें अंग्रेजी पुलिसके दारोगा थे, सुननेका मौका मिला है। ये दारोगा साहब मेरे मवक्किल थे और इनका देहान्त हालमें सन् १९४० के आस-पास लगभग ११५ वर्षकी आयुमें हुआ। वे मुझसे कहा करते थे कि **इस नेक-खसलत देवीके दुश्मन भी इसके विरुद्ध एक भी शब्द कहनेका साहस नहीं करते थे।**

झाँसीमें ही उन दिनों रानी लक्ष्मीबाईके घरानेके वैरी और प्रतिद्वन्द्वी नवाब अली बहादुर थे। ये महाशय डायरी लिखा करते थे और मुझे इनकी डायरी (रोजनामचा) पढ़नेका मौका मिला है। उसमें भी रानीके पवित्र चरित्र, अदम्य शौर्य, पराक्रम और वीरत्व, भगवान्के प्रति प्रेम और भक्ति, प्रजा-वत्सलता और जन-प्रियता तथा अभूतपूर्व रण-कौशल इत्यादिके प्रमाण मिलते हैं।

रानीसे युद्ध करनेके लिए कम्पनीने जो फौज जनरल सर ह्यूरोज (General Sir Hugh Rose) के मातहत भेजी थी, उसके साथ एक 'डाक्टर लो' नामक अंग्रेज सर्जन भी आया था। उसने भी झाँसीके युद्धका आँखों देखा हाल लिखा है। उसमें भी ऊपर लिखे तथ्यका समर्थन होता है।

रानीने झाँसी ४ अप्रैल सन् १८५८ की रातमें छोड़ी थी। २८ मईको रानीने कालपीमें सर ह्यू रोजकी फौजका मुकाबला किया और दुश्मनके छक्के छुड़ा दिये। किन्तु विधिकी विडम्बना ! रानी उस युद्धमें विजयिनी नहीं हो सकी। रानीके साथी और उनकी फौजके बिखरे अंश उरईके गोपालपुर नामक स्थानमें इकट्ठे हुए और यहाँ तय किया गया कि ग्वालियरके किलेको कब्जेमें करके उस मुकामको अंग्रेजोंके मुकाबिलेका केन्द्र बनाया जाय। रानीकी इस नयी योजनासे जनरल ह्यू भी स्तम्भित रह गया। रानीके युद्धकौशलके प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए जनरलने अंग्रेजी फौजके प्रधान सेनापति जनरल केम्पबैलको लिखकर भेजा :

'The rebels take guidance from the best of generals, but the ablest and 'best man' anongst them is the Rani.'

अर्थात् विरोधी दलके योग्य सेना-नायकोंमें रानी सबसे अधिक योग्य है। 'ग्वालियरके मुहासिरेमें रानी युद्धक्षेत्रमें लड़ते-लड़ते वीरगतिको प्राप्त हुई' यह खबर ज्यों ही सर ह्यू रोजको मिली, उसके मुँहसे अचानक निकल पड़ा :

'She was the best and bravest of them all'

रानीने महिलाओंकी जो फौज तैयार की थी, उसके बारेमें 'Revolt in Central India' नामक पुस्तकमें, जो अंग्रेज सरकारके प्रधान सेनापतिने अंग्रेज सेनाको सावधान करने और तैयार बने रहनेके लिए लिखी थी, कहा गया है :

भारतीय गोलन्दाज बड़े माहिर हैं, हमारे गोलेका जवाब गोलेसे देते हैं। सबसे अधिक अचम्भेमें डालनेवाली बात यह है कि रानीकी तोंपचियाँ अधिकतर महिलाएँ हैं और रानीने ही अपनी इस फौजको तैयार किया है।

वही व्यक्ति वास्तवमें वन्दनीय है, जिसके शील-सौन्दर्य और योग्यताका कीर्तिगान दुश्मनोंके मुँहसे हो। इंग्लैण्डमें सन् १८९५ में 'The Rani of Jhansi' (झाँसीकी रानी) के नामसे एक नाटक छपा था, जिसके लेखक हैं एलेग्जेण्डर रोजर्स। इस पुस्तककी भूमिका सर एडविन आरनोल्ड (Sir Edvin Arnold) ने लिखी है। इस भूमिकामें लिखा है :

'Its heroine is the most remarkable and greathearted woman, the Rani of Jhansi, who in the time of mutiny played the part of an Indian *Bod cea.* Maharattha by birth, and of the Royal and war-like line of Shivaji, She was 'every inch' a Queen···the high spirited lady flung her angry heart and passionate nature into the Scale against us in the memorable struggle, giving more trouble to the British Arms, before she fell dead upon the field of battle at 'Kota-Ki-Sarai' (Gwelior) in the dress of a horse-soldier, than many of the boldest rebel chieftains···I have often heard Sir Hugh Rose talk about the brave and beautiful Princess, who gave his column so much hard work, through those fierce and fiery battles in the North-Wast.

The Rani of Jhansi (झाँसीकी रानी) के भूमिका लेखक सर एडविन आरनोल्डने रानीकी जो सराहना की है, वह हमारे रोम-रोमको हिला देती है। ठीक ही कहा है 'रहीम'ने :

रहिमन साँचे सूरको वैरी करे बखान।

इस नाटककी अन्तिम पंक्तियाँ हैं :

But sing her ever in Poet's song,
Each creed, each caste in chorus, joining in—
'Ho ! Jhansi's Queen aud India's Heroine ! ! !

गाये जाओ कविके गीत सुर सेसुर मिलाकर
प्रत्येक धर्म, प्रत्येक जाति समवेत गान गायें
'हे झाँसीकी सम्राज्ञी तुम भारतकी देवी हो !'

अन्तिम क्षणोंमें जब वह महिषासुर-मर्दिनी रणक्षेत्रमें मृत्युकी गोदमें पड़ी अन्तिम साँसें ले रही थी, उसके मुँहसे टूटे स्वरमें ये वाक्य निकल रहे थे :

नैनम्······छिन्दन्ति······शस्त्राणि नैनम्······दहति······पावकः।

गोपालतापनी उपनिषद् : एक परिशीलन

श्री प्रभुदयाल मीतल

★

'गोपालतापनी उपनिषद्' कृष्णोपासनासे सम्बद्ध एक आध्यात्मिक रचना है। इसके 'पूर्व' और 'उत्तर' नामक दो भाग हैं। पूर्वभागको 'कृष्णोपनिषद्' और उत्तर-भागको 'आथर्वणोपनिषद्' कहा गया है। यह रचना सूत्रशैलीमें है, अतः कृष्णोपासनाके परवर्ती ग्रन्थोंकी अपेक्षा यह प्राचीन जान पड़ती है। इसका पूर्व भाग उत्तर भागसे भी पहलेका दीखता है। श्रीकृष्ण-प्रिया 'राधा' और उनके लीला-धाम 'व्रज' में से किसीका भी नामोल्लेख इसमें नहीं है। इससे भी इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

इस उपनिषत्के प्रथम भागमें पहले गोपालकृष्णके आध्यात्मिक स्वरूपका विवेचन किया गया है। इसका कथन है : जो गोपरूप जीवोंका आत्मभावसे सृष्टिपर्यन्त पालन करता है, वह करुणामूर्ति परमात्मा गोपाल है। ॐकाररूप वही एक सत्यस्वरूप है। वही परब्रह्म, कृष्णात्मक नित्य-आनन्दका एकमात्र स्वरूप मैं हूँ। वही मैं ॐ कार प्रणव रूप गोपाल ही परम सत्य तथा सर्वबाधाओंसे मुक्त, स्वच्छन्द एवं स्वशक्तिमय हूँ। से—इस भावनाके साथ आत्माका चिन्तन करते हुए मनको उसके साथ एकाकार कर देना चाहिए। 'मैं आत्मा गोपाल हूँ, अप्रत्यक्ष अप्रकट, अनन्त, नित्य स्थित रहनेवाला गोपाल मैं हूँ' ऐसी भावना बार-बार करनी चाहिए।

इस उपनिषद्में गोपाल-विद्याका विवेचन है। उक्त विद्याका पञ्चपदात्मक मन्त्र है : **कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा**। इस मन्त्रके आदिमें त्रितत्त्वात्मक कामबीज लगानेका विधान है। यह कामबीज 'क्लीं' है। इसमें 'क' अक्षर जलतत्त्ववाची है, 'ल' पृथ्वीतत्त्वका बोधक है, 'ई' शब्द मात्रात्मक अग्नि है, उसकी ज्योतिको लिये हुए अनुस्वारका ऊपरवाला बिन्दु ' ' चन्द्रमाका तेजःस्वरूप है। अग्निगर्भित त्रितत्त्वात्मक शक्तियोंका एक समन्वित स्वरूप कामबीज 'क्लीं' है। इस मन्त्रके पाँच पद पंचतत्त्वोंसे परिपूर्ण हैं। जैसे पाँच तत्त्वोंसे समस्त ब्रह्माण्ड और यह जीव-पिण्ड बना है, उसी तरह यह सर्वत्र सब वस्तुओंमें व्याप्त चेतन तत्त्वमय मन्त्र है। इस मन्त्रके प्रथम पदसे भूमिकी, दूसरे पदसे जलकी, तीसरेसे तेजकी, चौथेसे वायुकी तथा पांचवेंसे आकाशकी उत्पत्ति है। इस एक ही पंचपदात्मक गोपाल-मन्त्रका भली-भाति आराधन-जप करना चाहिए।

इस गोपाल-मन्त्रसे युक्त श्रीकृष्ण-तत्त्व सम्पूर्ण चराचर विश्वमें व्याप्त है। इस कृष्णतत्त्वसे तीनों लोक, तीनों काल, तीनों तत्त्व ओतप्रोत हैं। यही गोपाल-विद्याका मूल तत्त्व है। इस त्रिभुवनव्याप्त शक्तिवाली विद्याका योगस्थ होकर ध्यान और एकाग्र मनसे जाप करनेसे तीनों

लोकोंकी माया भक्तको बाधा नहीं पहुँचाती। वह मन्त्रकी सचेतन शक्तिके क्षेत्र में व्यापक आघात होनेके कारण आराधकके सामने वशीभूत होकर दीनभावसे खड़ी रहती है। गोपालकी सामर्थ्यमयी कृपा-दृष्टिका एक लघु अंशमात्र भी जिसे प्राप्त हो गया, वही प्राणी अजर, अमर, आत्माराम और पूर्णकाम बन जाता है। उसके चरणोंमें तीनों लोकोंका ऐश्वर्य स्वतः आकर लुढ़कने लगता है, और देवगण भी आकर उसकी वन्दना करते हैं :

त्रैलोक्यैश्वर्यमाप्नोति देवैरपि स पूजितः।

इस प्रकार गोपालके आध्यात्मिक स्वरूप, गोपाल-विद्या और गोपाल-मन्त्रका विवेचन करनेके अनन्तर द्वादश ब्रह्म-मन्त्रों द्वारा गोपाल श्रीकृष्णकी स्तुति की गयी है। इस स्तुतिको भी आदितत्त्व-चिन्तन, योगसाधनरूप और ब्रह्म-विज्ञानसम्पन्न होनेसे परम पावन मन्त्रमयी बतलाया गया है।

इस उपनिषदके उत्तर भागमें पहले श्रीकृष्ण और महर्षि दुर्वासाका अलौकिक माहात्म्य वर्णित है। उसके पश्चात् 'कृष्ण' शब्दका आध्यात्मिक अर्थ और मथुराकी आध्यात्मिक स्थितिका कथन किया गया है। फिर मथुरामण्डलके १२ वन और उसके देवताओंकी कोटियोंका नामोल्लेख कर मथुराका आध्यात्मिक स्वरूप बतलाया है। तत्पश्चात् चतुर्व्यूहके उल्लेख और गोपालके ध्यानके अनन्तर उन्हें नमस्कार किया गया है।

'कृष्ण' शब्दका आध्यात्मिक अर्थ बतलाते हुए कहा गया है कि इसमें 'कृष' सत्ता अर्थात् सर्वसमर्थताका वाचक है, और 'न' आनन्दमयी स्थितिका द्योतक है। इस प्रकार 'कृष्ण' शब्दका आध्यात्मिक अर्थ हुआ : जीवको सर्वसमर्थता और सर्वानन्दकी परमोत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करानेवाला सर्वोपरि देवतत्त्व। एक टीकाकारने इसका दूसरा अर्थ करते हुए कहा है : 'कृष्ण' शब्द कृष् धातुसे बना है, जिसका अभिप्राय है आकर्षण करना, खींचना। अर्थात् जो भक्तोंके पापोंको खींचकर उन्हें अपनेमें लीनकर समाप्त कर दे, वही सर्वोपरि देवतत्त्व श्रीकृष्ण है।

मथुराकी आध्यात्मिक स्थिति बतलाते हुए कहा है कि यह श्रीकृष्णके चक्रसे रक्षित साक्षात् गोपालपुरी है : '**चक्रेण रक्षिता हि मथुरा तस्माद् गोपालपुरी भवति।** मथुरा मंडलके १२ वनोंके नाम हैं : १. बृहत् वन, २. मधुवन, ३. तालवन, ४. काम्यबन, ५. बहुल वन, ६. कुमुदवन, ७. खदिरवन, ८. भद्रवन, ९. माण्डीरवन, १०. श्रीवन, ११. लोहबन १२. वृन्दावन। इसके देवताओंकी सात कोटियोंमें (१) १२ आदित्यों (२) ११ रुद्रों, (३) ८ वसुओं, (४) ७ मुनियों, (५) विनायकों, (६) ८ लिङ्गों और (७) १२ मूर्तियोंके नाम गिनाये गये हैं। फिर मथुराका आध्यात्मिक स्वरूप बतलाते हुए कहा है : 'समस्त जगत्का मंथन करनेपर जो ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ, उसीका सारभूत तत्त्व मथुरा है।

मथ्यते तु जगत् सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।
तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते॥

अंतमें चतुर्व्यूहका उल्लेख और गोपालका ध्यान तथा उन्हें नमस्कारके करने पश्चात् इस उपनिषद्की समाप्ति की गयी है।

●

नीतिवचनामृत

१.

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।
सुखं दुःखं भयं क्षेत्रं कर्मणैवाभिपद्यते॥

लेत जीव निज कर्मसे जनम मरन संसार।
सुख दुख भय मंगल मिलत कर्महिके अनुसार॥

२.

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम्।
कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः॥

फल प्रद ईश्वर जो अहै, कर्ताको फल देत।
न हिं वाकी प्रभुता चले कर्महीनके हेत॥

३.

स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते।
स्वभावस्थमिदं सर्वं ससुरासुरमानुषम्॥

है स्वभावपरवश जगत चलत ताहि अनुसार।
सब थिर रहत स्वभावमें देव असुर नर नार॥

•

सूक्ति-सुधा

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥

नमन तुम्हारे प्रभो ! मेघ-श्याम वपु को है,
विद्युत-समान पीत वसन विशाल को;
गुंजामय मंजु शिरोभूषण, मयूर-पिच्छ-
कलित ललित मुखमण्डल रसाल को।
ओदन-कवल, बेत, शृङ्ग और वांसुरीके
लक्ष्मसे लसित, उर धारे बनमाल को,
कोमल अमल चारु चरण-कमल वाले
नीररुह - नयन अहीर नन्दलाल को ॥

श्रीकृष्ण जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, ढुण्ढिगज, वाराणसी-१ में मुद्रित एवं प्रकाशित